Mar-Apr
2026

मासिक

अरफ़ात किरण

रायबरेली

तोहफ़ा-ए-रमज़ान

"रमज़ानुल मुबारक का सबसे बड़ा तोहफ़ा, रमज़ानुल मुबारक का सबसे बड़ा अहद-ओ-मुतालबा, रमज़ानुल मुबारक का सबसे बड़ा फ़ैज़ और असर यह होना चाहिए कि हमें ख़याल करने की आदत पड़ जाए और ख़ुदा की नाफ़रमानी से और उसकी मना की हुई चीज़ों से बचने का ख़याल पैदा हो जाए।"
(रमज़ानुल मुबारक और उसके तक़ाज़े: ८८)

मुफ़क्किर-ए-इस्लाम हज़रत मौलाना सैय्यद अबुल हसन अली हसनी नदवी (रह०)

मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल नदवी
दारे अरफ़ात, तकिया कलां, रायबरेली

रोज़े का उद्देश्य और मक़सद

"रोज़ा की भूख और फ़ाक़ा हमारे गर्म व मुश्तइल क़ूव्वत को थोड़ी देर के लिए सर्द कर देता है, खाने और पीने की मशग़ूलियत से हम आज़ाद होते हैं, दूसरे सख़्त कामों से भी हम उस वक़्त परहेज़ करते हैं, दिल व दिमाग़ शिकम–सेर मेदे के फ़ासिद बुख़ारात की परेशानी से महफ़ूज़ होते हैं, हमारे अंदरूनी जज़्बात में एक क़िस्म का सुकून होता है, यह फ़ुर्सत की घड़ियाँ, यह क़ुव्वत के एतिदाल की कैफ़ियत, यह दिल व दिमाग़ की जमईयत–ए–ख़ातिर, यह जज़्बात का सुकून होना, हमारे ग़ौर व फ़िक्र, अपने आमाल के मुहासबा, अपने कामों के अंजाम पर नज़र और अपने किए पर नदामत और पशेमानी और ख़ुदा–ए–तआला की बाज़–पुर्स से डर के लिए बिल्कुल मौज़ूँ है और गुनाहों से तौबा और नदामत के एहसास के लिए यह फ़िक्री और तबई माहौल पैदा कर देता है और नेकी और नेक कामों के लिए हमारे वजदानी ज़ौक़–ओ–शौक़ को उभारता है, यही सबब है कि रमज़ान का ज़माना तमामतर इबादतों और नेकियों के लिए मख़्सूस किया गया है। इसमें तरावीह है, इसमें एतिकाफ़ रखा गया है, इसमें ज़कात निकालना मुस्तहब है और ख़ैरात करना सबसे बेहतर है, हज़रत इब्ने अब्बास रज़ियल्लाहु अन्हुमा कहते हैं कि आंहज़रत (स०अ०व०) की फ़य्याज़ी तो गो सदा–बहार थी लेकिन रमज़ान के मौसम में वह तेज़ हवाओं से भी ज़्यादा तेज़ हो जाती थी।

इन बातों को सामने रखकर यह आसानी से समझा जा सकता है कि रोज़ा सिर्फ़ ज़ाहिरी भूख और प्यास का नाम नहीं है बल्कि यह दर हक़ीक़त दिल और रूह की भूख और प्यास का नाम है कि अल्लाह तआला ने रोज़ा की मुतवक़्क़ा ग़र्ज़ व ग़ायत (मक़सद) "तक़वा" क़रार दिया है, अगर रोज़ा से रोज़ा की यह ग़र्ज़ व ग़ायत हासिल न हो तो यह कहना चाहिए कि गोया रोज़ा ही नहीं रखा गया, या यूँ कहना चाहिए कि जिस्म का रोज़ा हो गया लेकिन रूह का रोज़ा न हुआ, इसी की तशरीह मुहम्मद रसूलुल्लाह (स०अ०व०) ने इन अल्फ़ाज़ में फ़रमाई है कि "रोज़ा रखकर भी जो शख़्स झूठ और फ़रेब के काम को न छोड़े तो ख़ुदा को उसकी ज़रूरत नहीं है कि इंसान अपना खाना–पीना छोड़ दे।" एक और हदीस में है कि आप (स०अ०व०) ने फ़रमायाः "रोज़ा बुराइयों से रोकने की ढाल है, तो जो रोज़ा रखे उसको चाहिए कि लग्व और फ़हश बातें न कहे और न जहालत (गुस्सा) करे, यहाँ तक कि अगर कोई उससे लड़ने– मरने पर आमादा हो और गाली भी दे तो यही कहे कि मैं रोज़ा से हूँ।"

तमाम इबादात में रोज़ा को तक़वा की अस्ल और बुनियाद इसलिए भी क़रार दिया गया है कि यह एक मुख़्फ़ी और ख़ामोश इबादत है जो रिया और नुमाइश से बरी है, जब तक ख़ुद इंसान उसका इज़हार न करे, दूसरों पर उसका राज़ अफ़्शा नहीं हो सकता और यही चीज़ तमाम इबादात की जड़ और अख़्लाक़ की बुनियाद है। इसी इख़्लास और बे–रियाई का यह असर है कि अल्लाह तआला ने उसकी निस्बत फ़रमाया कि रोज़ेदार मेरे लिए अपना खाना–पीना और लमज़्ज़ात को छोड़ता है, इसलिए "रोज़ा मेरे लिए है और मैं उसकी जज़ा दूँगा।" जज़ा तो हर काम की वही देता है लेकिन सिर्फ़ उसकी अज़मत और बड़ाई को ज़ाहिर करने के लिए उसकी जज़ा को ख़ुद अपनी तरफ़ मंसूब फ़रमाया।

(सीरतुन्नबीः ५/२०७–२०९)

हज़रत मौलाना सैय्यद मुहम्मद वाज़ेह रशीद हसनी नदवी (रह०)

بِسۡمِ اللّٰهِ الرَّحۡمٰنِ الرَّحِيۡمِ

मासिक

अरफ़ात किरण

रायबरेली

अंक: 03-04 मार्च–अप्रैल २०२६ ई० वर्ष: 18

सम्पादकीय मण्डल

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी

अब्दुस्सुब्हान नाखुदा नदवी

मुहम्मद हसन नदवी

सह सम्पादक

मुहम्मद मक्की हसनी नदवी

मुहम्मद अमीन हसनी नदवी

मुहम्मद अरमुग़ान बदायूंनी नदवी

अनुवादक

मुहम्मद सैफ़

रमज़ान बरकत वाला महीना

अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया:

"रमज़ान के महीने में मोमिन का रिज़्क़ बढ़ा दिया जाता है।"

(शोऐबुल ईमान लिल बैहिक़ी: 3608)

E-Mail: markazulimam@gmail.com www.abulhasanalinadwi.org

मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल–नदवी दारे अरफ़ात, तकिया कलां रायबरेली, यू०पी० 229001

मो० हसन नदवी ने एस० ए० आफसेट प्रिन्टर्स, मस्जिद के पीछे, फाटक अब्दुल्ला खॉ, सब्ज़ी मण्डी, स्टेशन रोड रायबरेली से छपवाकर आफिस अरफ़ात किरण, मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल–नदवी, दारे अरफ़ात, तकिया कलां रायबरेली से प्रकाशित किया।

Markazul Imam Abil Hasan Al-Nadwi Samiti (Punjab National Bank) A/c No. 6127002100000339 (IFSC: PUNB0612700)

आह-ए-सहर

हज़रत मौलाना बिलाली (रह0)

तसव्वुर में इधर से या उधर से
वह आए तो मगर आए किधर से

ख़ाजल होना पड़ेगा चश्म-ए-तर से
यह कह दो अब्र-ए-बारां से कि न बरसे

घड़ी भर के लिए निकले थे घर से
मगर कुछ कह गए अहले नज़र से

हुई मुद्दत गए वो मेरे घर से
महक जाती नहीं दीवार-ओ-दर से

ज़मीं सकते में है आह-ए-सहर से
फ़लक चक्कर में नालों के असर से

नवाज़िश अब उसी पर हो रही है
छिपे फिरते थे वह जिसकी नज़र से

समाया जा के अब उनकी नज़र में
गिराया ख़ुद को जब अपनी नज़र से

पपीहा बोलता है पी कहां है
ये गुज़ारा है हमारी रहगुज़र से

इसी का नाम है शायद मुहब्बत
इधर से हम चले और उधर से वो

मुझे देखा तो यूं आहिस्ता बोले
नहीं जाएगा ये दीवाना दर से

क़यामत को कहें हम भी क़यामत
मिलाए तू नज़र मेरी नज़र से

इस अंक में:

अज़मत-ए-रमज़ान का तक़ाज़ा.....3
बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

तक़वा क्या है?.....4
बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

फ़स्ख़ व तफ़रीक़ के मसाएल.....6
मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी

अम्बिया (अलैहिस्सलाम) की ज़िन्दगियां 8
अब्दुस्सुब्हान नाख़ुदा नदवी

कुरआन में डूब जा ऐ मर्दे मुसलमां.....10
मुहम्मद इस्माईल

पश्चिमी देशों की इन्सान दुश्मनी.....11
सैय्यद मुहम्मद मक्की हसनी नदवी

कुरआन करीम-बेमिसाल कलाम.....13
मुहम्मद अब्दुल्ला बिन हकीम हुजैफा अलीग

रोज़े का मक़सद.....14
मौलाना मुहम्मद नासिर नदवी

हालाते हाज़रा में इत्तिहाद की ज़रूरत.....16
सैय्यद सैफुद्दीन

मौसम-ए-बहार.....18
मुहम्मद मुसअब नदवी

इल्हाद का तूफ़ान; असबाब और हल.....20
मोहम्मद नज्मुद्दीन नदवी

एक अज़ीम कुर्बानी की ज़रूरत.....22
मुहम्मद अरमग़ान बदायूनी नदवी

रोज़े के मसाइल.....23

ज़कात-फ़ज़ाइल-ओ-मसाइल.....27

एतिकाफ़ के चन्द ज़रूरी मसाएल.....31

सम्पादकीय

अज़मत-ए-रमज़ान का तक़ाज़ा

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

उम्मत–ए–इस्लामिया पर अल्लाह की एक बड़ी नेमत रमज़ान का मुबारक महीना है, जो साल भर के लिए ईमानी व रूहानी ताक़त फ़राहम करता है। इस महीने की जो सही क़दर करता है और उससे पूरा फ़ायदा उठाता है, उसकी ज़िंदगी पर इसके बेहतर असरात मुरत्तब होते हैं। यह तज़किया–ए–नफ़्स का महीना है। अल्लाह तआला ने रोज़े के मक़ासिद में "तक़वा" का ज़िक्र फ़रमाया है। जो शख़्स एहतिसाब–ए–नफ़्स के साथ यह महीना गुज़ारता है, अपना जायज़ा लेता है और अमराज़–ए–बातिनी को इस महीने में दूर करने की कोशिश करता है, वह इस महीने के मक़सद को पूरा करता है। इसीलिए मशायख़ व मुस्लिहीन के यहाँ ख़ास तौर पर इसकी बड़ी अहमियत रही है। वे पूरा महीना फ़ारिग होकर इसके लिए यकसू हो जाते हैं, तकर्रुब इला–अल्लाह के कामों के लिए अपने आपको वक़्फ़ कर देते हैं और एक–एक लम्हे को हुज़ूरी–ए–क़ल्ब के साथ गुज़ारते हैं। उनकी सोहबत में रहने वाले भी उससे फ़ायदा उठाते हैं और अपने दिल की दुनिया आबाद करते हैं। उमूमी तौर पर अहल–ए–ईमान भी इस महीने में फ़िक्र व तवज्जोह करते हैं।

यह वह महीना है जिसमें सरकश शयातीन क़ैद कर दिए जाते हैं, दिल नरम होते हैं, नेकियों की तरफ़ तबीयत माइल होती है, गुनाहों से दूरी होती है और उनसे बचना आसान मालूम होता है। इसमें थोड़ी तवज्जोह से ख़ैर की तौफ़ीक़ होती है और आदमी आसानी से ख़ैर के रास्ते पर पड़ जाता है। बड़े मुबारक हैं वे लोग जो इसकी बरकतों से अपने दामन को भर लेते हैं, एक–एक लम्हे की क़ीमत को समझते हैं और पहले से इसकी तैयारी करते हैं ताकि इसकी बरकात में से कुछ छूटने न पाए।

हक़ीक़त यह है कि यह तैयारी क़ल्ब व दिमाग़ को तैयार करने की है, यह सहरी व इफ़्तार की तैयारी नहीं है। अकसर लोगों का ज़ौक़ इसकी ज़ाहिरी तैयारी का होता है और पहले से लोग सहरी व इफ़्तार के लिए लज़ीज़ खाने व शर्बत तैयार करते हैं। किसी हद तक यक़ीनन इसकी इजाज़त है। सहरी व इफ़्तार भी अब्दियत के मज़ाहिर में से है, लेकिन असल तैयारी का तअल्लुक़ क़ल्ब व दिमाग़ से है, उन्हें आलाइशों से पाक करना और फिर अपने आपको इस क़ाबिल बनाना कि रहमत–ए–इलाही मुतवज्जेह हो और उसकी बरकात से महरूमी न हो। यही असल तैयारी है। इसी लिए हुज़ूर पाक अलैहिस्सलातु वस्सलाम का मामूल शरीफ़ था कि शाबान की आख़िरी तारीख़ों में वअज़ फ़रमाते थे और लोगों को इस महीने की तरफ़ मुतवज्जेह फ़रमाते थे, और फिर दरमियान में भी मुतवज्जेह फ़रमाते रहते थे।

बहुत से बुरे काम ऐसे हैं जो रमज़ान के रोज़ों को गदला कर देते हैं। हदीस में आता है कि "बहुत से रोज़ेदार वे हैं जिनके हिस्से में भूखे रहने के सिवा कुछ नहीं, और बहुत से शब–बेदार वे हैं जिनके हिस्से में रात जागने के सिवा कुछ नहीं।"

हक़ीक़त में यह वे लोग हैं जो रोज़ा भी रखते हैं और दिन भर ग़ीबत में मुबतला रहते हैं, दूसरे गुनाह के काम भी करते हैं। इफ़्तार करते हैं तो हराम व हलाल का फ़र्क़ नहीं होता, इफ़्तार हराम व मुश्तबह माल से करते हैं और रातों को जागते हैं तो उसका हक़ अदा नहीं करते, फ़ुज़ूल–गोई और लायानी कामों में रात बिता देते हैं। मौजूदा दौर में शबीना का सिलसिला चल निकला है, रात–रात भर नमाज़ होती है और लोग बजाय नमाज़ में शामिल होने के चाय–सिगरेट में लगे रहते हैं, एक जश्न–सा मनाते हैं और बहुत कम वक़्त इबादत में सर्फ़ करते हैं। यह चीज़ें वे हैं जो दिन के रोज़ों और रात की बेदारी की रूह निकाल देती हैं। ज़ाहिर है, जिसने रमज़ान की ऐसी नाक़द्री की होगी, उसके लिए ईद की ख़ुशी क्या?!

तक़्वा क्या है?

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

हलाल व हराम और मुश्तबह चीज़ों से बचने का हुक्मः

हदीस शरीफ़ में मुश्तबह चीज़ों से बचने का हुक्म है, इसलिए कि अगर हम मुश्तबह चीज़ों से बचने का मिज़ाज बना लेंगे तो हराम चीज़ों से भी बचना आसान होगा, वरना हराम से बचना मुश्किल होगा। इसीलिए जब तक कोई मसला हमारे सामने पूरी तरह वाज़ेह न हो, उस वक़्त तक उस काम से बचना ज़रूरी है। अगर हमने पहले मरहले में उस काम को कर लिया और यह ख़याल किया कि बाद में किसी से मसला मालूम कर लेंगे तो मुमकिन है कि वह हराम हो और तुम हराम में पड़ जाओ। ज़रूरत है कि जब तक कोई बात वाज़ेह न हो जाए, उस वक़्त तक उससे बचने की भरपूर कोशिश की जाए।

आज के ज़माने में दानिश्वर तबक़े के कुछ लोग यह तब्सिरा करते हैं कि मौलवी बहुत देर से फ़ैसला करते हैं। मिसाल के तौर परः एक ज़माने में मौलवी माइक पर अज़ान देना जाइज़ नहीं कहते थे, एक अर्सा गुज़रने के बाद जाइज़ कहने लगे बल्कि अब तो नमाज़ भी इसी से हो रही है। ऐसे लोगों को समझना चाहिए कि उलमा जल्दबाज़ी में कोई फ़ैसला नहीं करते, बल्कि वह शरई अहकामात में जितना ग़ौर कर सकते हैं उतना ग़ौर–ओ–फ़िक्र करते हैं, यहाँ तक कि जब बाल की खाल निकल आती है तब वह कोई फ़ैसला करते हैं कि यह जाइज़ है या नाजाइज़ है या मक़रूह। अगर हमारे उलमा जल्दबाज़ी में फ़ैसला करने लगें तो नतीजा यह होगा कि शरीअत का तिया–पाँचा हो जाएगा। कितनी चीज़ें नाजाइज़ क़रार दे दी जाएँगी और कितनी चीज़ें जाइज़ क़रार दे दी जाएँगी और बाद में पता चलेगा कि वह काम नाजाइज़ था। इसलिए एहतियात बेहतर है। फिर जब बात वाज़ेह हो जाए कि इसमें कोई हरज नहीं और यह कोई ग़ैर–शरई चीज़ नहीं है तो वह दुरुस्त है।

शरीअत में हमें एक रास्ता बता दिया गया कि हमारे सामने हलाल भी वाज़ेह है और हराम भी। इसमें हलाल को इख़्तियार कर लो और हराम से बच जाओ। लेकिन अगर कोई हराम में पड़ जाए तो यह बहुत ख़तरनाक बात है और आख़िरी दर्जे की बात है। इसके बाद अल्लाह की मदद नहीं आती। आज हम मुसलमानों की सूरत–ए–हाल यह है कि सूद लें, रिश्वत लें और नशे में मुलव्विस हों। सच्ची बात यह है कि आज हमारे मुसलमान खुले हराम में मुब्तला होते हैं। ज़ाहिर है इसके बाद अल्लाह की मदद कहाँ से आ सकती है। अल्लाह की मदद तो अपने उन ख़ास बंदों पर आती है जो अल्लाह को मानने वाले, अल्लाह के दीन को पूरी तरह से मानने वाले, अल्लाह के नबी (स0अ0व0) की शरीअत की पूरी तरह से इत्तेबा करने वाले हों। उनके साथ अल्लाह की मदद होती है। तारीख़ में इसकी बीसियों मिसालें हैं।

आज हमारी ज़िंदगी अजीब है। आम तौर पर मुश्किल से दो–चार लोग ऐसे मिलेंगे जो दीन पर पूरी तरह अमल करने वाले हों। अगर हम ऐसा इस्लामी समाज तलाश करना चाहें जहाँ पूरी तरह से दीन पर अमल होता हो, उसी समाज को बनाने के लिए यह उसूल समझने की ज़रूरत है कि हलाल इख़्तियार किया जाए, हराम से बचा जाए और मुश्तबह चीज़ों में भी एहतियात ज़रूरी है। अगर उनसे भी अपने आप को बचाया जाए तब एक इस्लामी समाज तशकील पाएगा और हर आदमी के लिए हराम से बचना आसान होगा। अगर कोई ऐसा नहीं करेगा तो ख़तरा है कि वह हराम में पड़ जाएगा।

इन उसूलों को समझना हमारे लिए ज़रूरी है। अगर हम ये बुनियादी बातें समझ लें तो इंशाअल्लाह रास्ते खुलते चले जाएँगे, वरना हमें दुश्वारियों का सामना करना पड़ेगा। यही वह बात है जिसकी आप

(स0अ0व0) ने मिसाल दी कि अगर किसी का जानवर किसी की चरागाह के क़रीब जाएगा तो उसको सज़ा हो जाएगी। इसी तरह अगर कोई आदमी हराम चीज़ों के क़रीब चला जाएगा, यह समझ कर कि इतना तो जाइज़ है, तो इसका नतीजा यह होगा कि वह हराम में पड़ जाएगा। वाक़ई बात यह है कि जिस तरह जानवर को रोकना मुश्किल है, उसी तरह नफ़्स को रोकना भी बहुत मुश्किल है। इरशाद–ए–इलाही हैः "नफ़्स तो बुराई ही सिखाता है।" (सूरह यूसुफ़ः 53)

इस मिसाल से हमें सबक़ लेने की ज़रूरत है और अपनी ज़िंदगी का जायज़ा लेने की भी ज़रूरत है कि कौन से काम हम कर लेते हैं और यह नहीं सोचते कि सही है या नहीं, बल्कि हम चश्म–पोशी करते हैं और यह एक ग़ैर–शरई तरीक़ा है। जो अल्लाह वाले लोग हैं, वे तो छोटी से छोटी मुश्तबह चीज़ में भी एहतियात से काम लेते हैं। इसका नतीजा यह होता है कि अल्लाह तबारक–ओ–तआला उन्हें पाकीज़ा ज़िंदगी अता फ़रमाते हैं और उनकी दुआएँ क़ुबूल होती हैं। हदीस में भी आता है कि आदमी की दुआ उसी वक़्त क़ुबूल होती है जब उसका लिबास हलाल पैसे से हो और उसका खाना–पीना भी हलाल हो। अगर ये सब चीज़ें हलाल नहीं हैं तो हदीस में आता है कि बंदा हाथ उठाकर दुआ करता है और कहता हैः ऐ मेरे रब! ऐ मेरे रब! लेकिन उसका पीना हराम और उसका लिबास हराम हो तो उसकी दुआ कहाँ से क़ुबूल होगी?!

आज हम में से अकसर लोगों का यही हाल है कि हम क्या खा रहे हैं, कहाँ से खा रहे हैं, हमें इसका कोई ख़याल नहीं होता। नतीजा यह है कि ईमान के अंदर वह कैफ़ियत नहीं रहती, अल्लाह से मोहब्बत–ओ–तअल्लुक़ का जो एक ज़ौक़ होना चाहिए, वह भी बाक़ी नहीं रहता और ज़िंदगी एक दूसरे रास्ते पर चली जाती है। इसमें ख़ास तौर पर एहतियात की ज़रूरत है कि आदमी हराम से बचे और मुश्तबह चीज़ों से भी बचे, बल्कि मुश्तबह आमाल से भी बचे और अपनी ज़िंदगी का मुस्तक़िल जायज़ा लेता रहे। इंशाअल्लाह इसके ज़रिये अल्लाह की मदद होगी और अल्लाह तबारक–ओ–तआला हमें एक अच्छी ज़िंदगी अता फ़रमाएँगे।

इस्लाम का मेयार-ए-तहज़ीब

मौलाना सैयद मुहम्मदुल हसनी (रह0)

"जदीद दुनिया में ख़ुदग़र्ज़ी का नाम "तहज़ीब" है, इस्लाम में ईसार व बेग़र्ज़ी का, जदीद दुनिया में ख़ुदपरस्ती का नाम तहज़ीब है, इस्लाम में ख़ुदशिकनी का, यह वह बुनियादी नुक़्ता–ए–इख़्तिलाफ़ है जो इस्लाम के मेयारे तहज़ीब को मौजूदा गुज़िश्ता तमाम ख़ुदसाख़्ता मेयारों बल्कि सही अल्फ़ाज़ में मफ़रूज़ात से बिल्कुल जुदा कर देता है, इसलिए कि अगर कोई इस्लाम के ज़िम्न में तहज़ीब व तमद्दुन का बार–बार ज़िक्र करता है तो उसको अच्छी तरह सोच लेना चाहिए कि उसके ज़हन में तहज़ीब का मफ़हूम क्या है? कहीं ऐसा तो नहीं कि वह अपनी बेख़बरी में तहज़ीब के उसे चले हुए बाज़ारी मफ़हूम को मुराद ले रहा है जिसका अलमबरदार मग़्रिब है, अगर ऐसा है तो वह इस्लाम की तरफ़ एक ऐसी चीज़ मन्सूब कर रहा है जिससे इस्लाम बिल्कुल बरी है। इस्लामी तहज़ीब व तमद्दुन की जलवागरी देखने के लिए हमें हज़रत उमर रज़ि0 के झोंपड़े की तरफ़ देखने की ज़रूरत है, दमिश्क़ व बग़दाद के दरबारों या ग़रनाता व शबीलिया के ज़रनिगार महलों की तरफ़ नहीं, इसकी तश्रीह के लिए व फ़ाराबी की तरफ़ रुजूअ करने की ज़रूरत नहीं, इसलिए कि सहाबा व ताबईन और उलमा व औलिया उम्मत की पाकीज़ा इस्लामी ज़िन्दगी के अमली नमूना काफ़ी हैं। इस्लामी तहज़ीब फ़ुनूने लतीफ़ा, फ़न्ने तस्वीर और फ़न्ने तामीर के नाज़ुक पेच–ओ–ख़म में नहीं मिलेगी, इसकी तलाश अहले हक़ की सीरत, सुन्नत और अज़ीमत व ईसार व ख़िदमत के उन ज़िन्दा व जावेद नमूनों में करनी चाहिए जिनको हम अब्दुल क़ादिर जीलानी, शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया, मुजद्दिद अलफ़े सानी और सैयद अहमद शहीद जैसे नामों से याद करते हैं।" (जादए फ़िक्र–ओ–अमलः 128–129)

फ़स्ख़ व तफ़रीक़ के मसाएल

मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी

तफ़रीक़ की तेरहवीं बुनियाद

नाबालिग़ का ख़ियार–ए–बुलूग़ को इख़्तियार करनाः

शरीअत ने इसका हुक्म दिया है कि गवाह लड़का हो या लड़की, अगर वह बालिग़ हैं तो निकाह में उनकी रज़ामंदी ज़रूरी होगी। मुआशरे में लड़कियों से रज़ामंदी मालूम करने का एहतिमाम नहीं किया जाता, इसलिए ख़ास तौर से हदीस में हुक्म दिया गया कि लड़की अगर कुंवारी हो तो उसकी मर्ज़ी भी मालूम की जाए। अगर वह इजाज़त दे दे या सराहत से इजाज़त न दे, ख़ामोश रहे तो इसे भी उसकी इजाज़त माना जाएगा; इसलिए कि अगर रिश्ता नापसंद हो तो आसानी से इंकार कर देगी और अगर पसंद हो तो पसंदीदगी ज़ाहिर करने से हया माने हो सकती है और अगर लड़की सैय्यिबा हो यानी पहले उसका कहीं निकाह हो चुका था, लेकिन तलाक़ होने या शौहर की वफ़ात के सबब दोबारा निकाह किया जा रहा है तो सराहत से इजाज़त देना ज़रूरी होगाः

"عن أبي هريرة أن رسول الله صلى الله عليه وسلم قال: لا تنكح الأيم۔الحديث"

(बुख़ारीः 5136, मुस्लिमः 1419)

आँहज़रत (स0अ0व0) के दौर–ए–मुबारक में इसकी ख़िलाफ़वरज़ी की गई तो आपने बुख़ारी की रिवायत के मुताबिक़ सैय्यिबा की शिकायत पर उसका निकाह फ़स्ख़ कर दिया, और बाकिरा (कुंवारी) ने शिकायत की तो उसे निकाह बाक़ी रखने या रद्द करने का अबू दाऊद की रिवायत के मुताबिक़ ख़ियार दिया।

(देखियेः सहीह अल–बुख़ारीः 5138–5139; सुनन अबी दाऊदः 2096)

और अगर लड़का या लड़की नाबालिग़ हों और बाप–दादा मौजूद न हों, दूसरे औलिया, जैसे भाई या चाचा वग़ैरह, मौजूद हों और ये लोग उस नाबालिग़ लड़के या लड़की का निकाह कुफ़ू में, मेहर–ए–मिस्ल से करा दें; उनका ख़याल हो कि रिश्ता मुनासिब है, बाद में ऐसा रिश्ता शायद न मिल सके, तो शरई तौर पर यह निकाह मुनअक़िद तो हो जाता है, लेकिन बालिग़ होने के बाद लड़के और लड़की दोनों को ख़ियार–ए–बुलूग़ हासिल होता है कि चाहें तो निकाह को बाक़ी रखें और चाहें तो शरई क़ाज़ी के यहाँ जाकर निकाह फ़स्ख़ करा लें। लेकिन इसकी तीन शक्लें हैं और सबके मुख़्तलिफ़ अहकाम हैंः

1– अगर लड़के का निकाह कराया गया था और वह निकाह फ़स्ख़ कराना चाहता है, तो बुलूग़ के बाद जब तक वह अपने क़ौल या किसी फ़ेल से रज़ामंदी का इज़हार न कर दे, उसका यह ख़ियार बाक़ी रहेगा।

2– यही हुक्म उस वक़्त होगा जब लड़की का निकाह कराया गया हो और बुलूग़ के वक़्त वह सैय्यिबा हो गई हो, यानी बुलूग़ से पहले ही शौहर ने उससे सोहबत कर ली हो।

3– लेकिन जब लड़की बुलूग़ के वक़्त कुंवारी हो, तो उसे ख़ियार–ए–बुलूग़ हासिल होने के लिए शर्त यह है कि बालिग़ होते ही (यानी बुलूग़ की कोई अलामत देखते ही या चाँद के एतिबार से पंद्रह साल पूरे होते ही) ज़बान से सराहत के साथ इस निकाह से राज़ी न होने के अल्फ़ाज़ अदा करे। अगर लोग मौजूद हों तो गवाह (यानी दो मर्दों को या एक मर्द और दो औरतों को उसी वक़्त) बना ले, वरना जैसे ही मिलें बना ले; फिर दारुल–क़ज़ा जाए।

यह तफ़सील उस वक़्त है जब निकाह का उसे इल्म हो। लेकिन अगर पहले इत्तिला नहीं थी, तो बुलूग़ के बाद जब इत्तिला मिले, मुनदरजा–बाला अहकाम रहेंगे और यह सब उसी वक़्त उसे करना होगा।

(शामीः 3/73, अल–हीलतुन–नाजिज़हः 143–148)

जब नाबालिग़ का निकाह बाप या दादा कराए?

अगर नाबालिग़ लड़के या लड़की का निकाह बाप ने या बाप के न होने की सूरत में दादा ने कराया हो, तो बालिग़ होने के बाद उन्हें ख़ियार–ए–बुलूग़ हासिल नहीं

होगा, चाहे उन्होंने कुफ़ू में निकाह कराया हो या ग़ैर–कुफ़ू में। अलबत्ता कुछ सूरतों में बाप–दादा का कराया हुआ निकाह सरासर मुनअक़िद ही नहीं होता; वे सूरतें मुनदर्जा ज़ेल हैं:

1– जब बाप या दादा ने नशे की हालत में नाबालिग़ लड़के या लड़की का निकाह नामुनासिब जगह करा दिया हो। (शामी: 3/67)

2– अगर बाप–दादा अदाई–ए–सू–ए–इख़्तियार से मारूफ़ हों यानी यह बात मशहूर हो कि लालची होने के सबब बच्चों का रिश्ता नामुनासिब जगह कर देते हैं और इससे पहले इसका तजुर्बा हो चुका हो, और वे अपने नाबालिग़ बच्चों का निकाह ग़ैर–कुफ़ू में कर दें; या लड़के की शादी में मेहर बहुत ज़्यादा बढ़ा दें और लड़की की शादी में बहुत घटा दें तो निकाह बातिल होगा। (शामी: 3/66–67)

3– इसी तरह अगर बाप–दादा फ़ासिक़ मुतहत्तिक यानी अलानिया फ़ासिक़ और बेबाक व बेग़ैरत हों, तो उनका हुक्म भी सू–ए–इख़्तियार जैसा होगा। (शामी: 3/54)

और अगर ग़ैर–कुफ़ू में बाप–दादा के अलावा भाई या चाचा वग़ैरह जैसे किसी वली ने निकाह करा दिया हो, तो वह बदरजा–ए–ऊला बातिल होगा। (शामी: 3/67)

तफ़रीक़ की चौदहवीं बुनियाद

औरत का हुरमत–ए–मुसाहरत से दो–चार होना:

जब कोई शख़्स किसी औरत से शादी करता है, तो औरत के उसूल और फ़ुरूअ हमेशा के लिए मर्द पर हराम हो जाते हैं; यानी औरत की माँ उसकी माँ बन जाती है और उसकी नानी–दादी उसकी भी नानी–दादी बन जाती हैं। इसी तरह औरत से दुख़ूल के बाद उसकी बेटी भी उसकी बेटी बन जाती है; और जो बेटी उसके सुल्ब से हो, वह तो उसकी बेटी रहती ही है। ज़ाहिर है सास वग़ैरह से नसबी तौर पर उसका ताल्लुक़ नहीं होता; यह ताल्लुक़ औरत से शादी करने के बाद क़ायम होता है। इससे क़ायम होने वाला रिश्ता सिहरियत कहलाता है, यानी ससुराल के ज़रिये क़ायम रिश्ता। अब अगर कोई फ़ासिक़ और बद्दीन इस रिश्ते के तक़द्दुस को पामाल करता है, तो उसकी सज़ा के तौर पर बीवी हमेशा के लिए उस पर हराम हो जाती है; इसलिए कि उसने ऐसे रिश्ते के तक़द्दुस को पामाल किया है, जिसको अल्लाह तआला ने बतौर नेमत के ज़िक्र किया है:

وَهُوَ الَّذِيْ خَلَقَ مِنَ الْمَاءِ بَشَراً فَجَعَلَهُ نَسَباً وَصِهْراً

"और अल्लाह ही ने पानी से इंसान को बनाया, फिर उसे ख़ानदान वाला और ससुराल वाला बनाया।" (अल–फ़ुरक़ान: 54)

लेकिन इस हुरमत के बावजूद, जब तक क़ज़ा–ए–क़ाज़ी या मुतारका न हो जाए, औरत के लिए कहीं अलग निकाह करना जाइज़ नहीं होगा। जहाँ तक क़ज़ा–ए–क़ाज़ी का ताल्लुक़ है, तो इसके बारे में "किताबुल–फ़स्ख़ वत्तफ़रीक़" में मुनदरजा–ज़ेल तफ़सील की गई है:

"जब औरत हुरमत–ए–मुसाहरत की बुनियाद पर क़ाज़ी के यहाँ मुक़दमा दायर करेगी और यह मुतालबा करेगी कि मुझे मेरे ख़ाविंद से तफ़रीक़ कर दी जाए, तो क़ाज़ी शौहर से बयान लेगा। अगर उसने औरत के बयान की तस्दीक़ की, तो क़ाज़ी औरत की तफ़रीक़ कर देगा और अगर शौहर ने इस दावे की तस्दीक़ नहीं की, तो औरत से क़ाज़ी गवाह तलब करेगा। गवाह पेश होने पर जब हुरमत–ए–मुसाहरत साबित हो जाएगी, तो क़ाज़ी तफ़रीक़ कर देगा। और अगर औरत गवाह न पेश कर सकी, या पेश किए लेकिन उनमें शराइत–ए–शहादत मौजूद न थीं, तो मर्द से हलफ़ लिया जाएगा। अगर उसने हलफ़ से इंकार कर दिया, तो क़ाज़ी तफ़रीक़ कर देगा; और अगर शौहर ने हलफ़ उठा लिया, तो क़ाज़ी मुक़दमा ख़ारिज़ कर देगा (लेकिन औरत के लिए इस हालत में जाइज़ नहीं होगा कि वह शौहर को अपने ऊपर क़ाबू दे यानी यह एक परेशानी की सूरत पैदा हो जाएगी)।" (किताबुल–फ़स्ख़ वत्तफ़रीक़: 143; शामी: 3/37; किताबुन–निकाह, फ़सल फ़िल–मुहर्रमात)

जहाँ तक मुतारका का ताल्लुक़ है, तो औरत अगर मदख़ूल–बहा है, तो उसका मुतारका यह है कि ज़बान से कहे कि "मैंने इसे छोड़ दिया", या इससे मिलते–जुलते अल्फ़ाज़। और ग़ैर–मदख़ूल–बहा में अल्फ़ाज़ से भी मुतारका हो जाता है, और एहतियातन इसी पर अमल होना चाहिए। अलबत्ता एक क़ौल यह भी है कि अगर इस इरादे के साथ उससे किनारा–कशी कर ले कि अब उसके पास नहीं जाएँगे, तब भी वह औरत कहीं अलग निकाह कर सकती है। (शामी: 3/73)

लेकिन बेहतर और एहतियात यही है कि मदख़ूल–बहा की तरह इससे भी क़ौली मुतारका किया जाए।

अम्बिया (अलैहिस्सलाम) की ज़िन्दगियां

अहले ईमान के लिए नमूना

अब्दुस्सुब्हान नाख़ुदा नदवी

हदीस शरीफ़ में है कि आँहज़रत (स0अ0व0) ने फ़रमायाः जब रमज़ान का महीना आता है तो जन्नत के दरवाज़े पूरी तरह खोल दिए जाते हैं, जहन्नम के दरवाज़े पूरी तरह बंद कर दिए जाते हैं और तमाम सरकश शैतानों को ज़ंजीरों में पूरी तरह जकड़ दिया जाता है।

आप (स0अ0व0) ने रमज़ान में रोज़ों के मुताल्लिक़ यह बात भी इरशाद फ़रमाई कि जो शख़्स रमज़ान के रोज़े ईमानदारी यानी पूरी सच्चाई के साथ रखे और अपना जायज़ा लेते हुए सवाब की उम्मीद में रखे, तो उसके पिछले गुनाह माफ़ कर दिए जाते हैं।

इस हदीस से पता चला कि सग़ीरा गुनाह माफ़ होंगे और कबीरा गुनाहों की शिद्दत में कमी कर दी जाएगी। बेशक अल्लाह का जो बंदा रमज़ान के रोज़े सच्चाई के साथ रखेगा और तौबा करेगा, तो अल्लाह तआला से क्या बईद है कि वह कबीरा गुनाहों को भी माफ़ कर दें।

हुज़ूर (स0अ0व0) ने यह बात भी इरशाद फ़रमाई कि जो शख़्स रमज़ान में क़याम का एहतिमाम करे, यानी अल्लाह के लिए नमाज़ें पढ़े और रातों को जागे, और सबसे बढ़कर शब–ए–क़द्र में क़याम करे लेकिन इसमें भी वही ईमानदारी और सवाब की नियत ज़रूरी है तो उसके भी तमाम पिछले गुनाह माफ़ कर दिए जाएँगे।

शब–ए–क़द्र को पाने का आसान तरीक़ा यह है कि आदमी रमज़ान के आख़िरी अशरे की तमाम रातों में इबादत का भरपूर एहतिमाम करे, तो यक़ीनी बात है कि उसे शब–ए–क़द्र हासिल हो जाएगी। आदमी आख़िरी अशरे की रातों में यह समझकर इबादत करे कि यह रात उसी अशरे में है, तो यक़ीनन किसी न किसी शब में उसे यह शर्फ़ हासिल होगा।

एक हदीस–ए–क़ुदसी है कि आँहज़रत (स0अ0व0) ने यह बात भी इरशाद फ़रमाई कि अल्लाह का इरशाद हैः "इब्न–ए–आदम का हर अमल उसका है, सिवाए रोज़े के; रोज़ा मेरा है और मैं ख़ुद ही उसका बदला दूँगा।"

तमाम मुसलमानों का इस बात पर यक़ीन है कि हमारा हर अमल अल्लाह के लिए होता है और अल्लाह ही हर अमल का बदला देता है। अब अगर किसी चीज़ की निस्बत अल्लाह रब्बुल–इज़्ज़त अपनी तरफ़ कर दे, तो उसकी शान ही कुछ और हो जाती है। इस हदीस–ए–क़ुदसी में भी अल्लाह रब्बुल–इज़्ज़त ने रोज़े की निस्बत अपनी तरफ़ की है। यह एक ऐसी इबादत है जिसमें आदमी ब–ज़ाहिर इबादत करते हुए दिखाई भी नहीं देता। जब तक आदमी ज़बान से न बोले, इसमें रियाकारी का इमकान ही नहीं है। इसके अलावा हर इबादत में इंसान कुछ न कुछ करता हुआ नज़र आता है, लेकिन रोज़े में हालत यह होती है कि आदमी लोगों के साथ उठता–बैठता है, कारोबार करता है और एक–दूसरे से मुआमला भी करता है, लेकिन पेट से भूखा होता है और एक अज़ीम–तरीन इबादत में मशग़ूल रहता है। गोया इस इबादत में ख़ुलूस ही ख़ुलूस है, और अल्लाह तआला को वही अमल बे–इंतिहा महबूब है जो ख़ालिस अल्लाह के लिए किया जाए; बल्कि यह क़बूलियत की शर्त भी है। मुमकिन है कि इसी बुनियाद पर अल्लाह ने फ़रमाया कि "मैं ही रोज़े का बदला देता हूँ।"

आप (स0अ0व0) ने उम्मत के सामने हमेशा दोनों पहलू रखे हैं। अगर एक तरफ़ रमज़ान की बशारत वाली ये रिवायतें हैं, तो दूसरी तरफ़ वे रिवायतें भी हैं जिनसे अंदाज़ा होता है कि अगर हमने इस अज़ीम–तरीन महीने में रोज़ों का और इसकी बाबरकत रातों में इबादत करने का एहतिमाम न किया, और इस महीने के हुक़ूक़ की अदायगी का ख़याल न रखा, तो इसका वबाल भी उतना ही संगीन है।

आप (स0अ0व0) ने इरशाद फ़रमाया कि कितने ही ऐसे रोज़ेदार हैं जिन्हें अपने रोज़ों के बदले में सिवाए भूख–प्यास के कुछ हासिल नहीं होता, और कितने ही

ऐसे रातों के इबादत–गुज़ार हैं जिन्हें अपनी रातों की इबादत में सिवाए शब–बेदारी के और अपनी नींद ख़राब करने के कुछ हासिल नहीं होता।

बेशक यह बहुत डरने की बात है कि हम दिन में रोज़े रख रहे हैं और रातों को इबादत भी कर रहे हैं, भूख और प्यास की शिद्दत को बर्दाश्त कर रहे हैं, लेकिन हमारा हाल यह है कि हम काम कर रहे हैं और बस थकते जा रहे हैंकृइसके बदले में हमें कुछ हासिल नहीं हो रहा। इसलिए इस सिलसिले में हमें बहुत ग़ौर–ओ–फ़िक्र की ज़रूरत है।

आँहज़रत (स0अ0व0) ने कुछ मक़ामात पर यह तशरीह भी की है कि रोज़ों का तक़ाज़ा क्या है। एक जगह फ़रमाया कि जो आदमी रोज़े में झूठ न छोड़े और झूठ पर अमल को न छोड़े, तो अल्लाह रब्बुल–इज़्ज़त को भी यह ज़रूरत नहीं कि वह अपने खाने–पीने को छोड़े।

एक दूसरी रिवायत में आँहज़रत (स0अ0व0) का यह भी इरशाद है कि अगर कोई आदमी रोज़ा रखे, तो उसे चाहिए कि वह झगड़ों, बखेड़ों और गाली–गलौज से दूर रहे। और अगर कोई दूसरा शख़्स ज़बरदस्ती उसके साथ गाली–गलौज पर उतर आए, तो वह उससे ज़बान से भी कहे और दिल में भी यह बात रखे कि "मैं रोज़ेदार हूँ, और यह मेरा काम नहीं।"

अगर आज हम अपने समाज का जायज़ा लें, तो मुश्किल से ऐसे लोग नज़र आएँगे जो अहादीस के इन तक़ाज़ों को सामने रखकर रोज़ा रखते हों और इबादत का एहतिमाम करते हों, और बिल्कुल उसी तरह रोज़ा रखते हों जैसा कि अल्लाह के मक़बूल बंदे रखते हैं।

अल्लाह तआला ने कुरआन में रोज़े का एक बुनियादी मक़सद "तक़वा" बताया है। और तक़वा का मतलब हैः अमानतदारी और ख़ौफ़–ए–खुदा का होना। रोज़े में हर आदमी की यही तरबियत मक़सूद है, उसके सामने सारी चीज़ें मौजूद हैं, फिर भी वह खाता–पीता नहीं। इसी तरह पूरी ज़िंदगी के लिए इंसान यह तय कर ले कि वह अमानतदारी और दियानतदारी के साथ ज़िंदगी बसर करेगा, यही रोज़े का बुनियादी पैग़ाम है।

एक हदीस में आँहज़रत (स0अ0व0) ने इरशाद फ़रमाया कि मेरी उम्मत में सबसे पहले जो चीज़ उठाई जाएगी, वह "खुशूअ" है, यानी दिल के सच्चे लोग, अल्लाह वाले लोग, मुख़्लिस लोग और अल्लाह के लिए इबादत करने वाले लोग। आप (स0अ0व0) ने फ़रमाया कि एक ज़माने में यह हाल हो जाएगा कि तुम किसी एक भी खुशूअ वाले को नहीं देखोगे।

आँहज़रत (स0अ0व0) ने दूसरी बात यह इरशाद फ़रमाई कि मेरी उम्मत में दूसरी चीज़ जो उठा ली जाएगी, वह "अमानतदारी" है, यानी मामलात में अमानतदारी नहीं रहेगी। किसी को ठग लिया, किसी को धोखा दे दिया, किसी से क़र्ज़ लेकर मुकर गए, किसी की जायदाद हड़प ली, किसी पर ग़लत मुक़द्दमा दायर कर दिया, इसके अलावा न जाने कितने रज़ील–तरीन काम हैं जिन्हें आज के ज़माने में होशियारी कहा जाता है। ज़ाहिर है, इससे बढ़कर जाहिल और नादान कौन हो सकता है?!

रमज़ान के मुबारक मौक़े पर यह हदीस हमें एक पैग़ाम देती है। हमारे अंदर खुशूअ की कैफ़ियत पैदा होने का यह मुबारक महीना सबसे बड़ा ज़रिया है। हमें इस महीने में ज़्यादा से ज़्यादा खुशूअ की कैफ़ियत पैदा करने की कोशिश करनी चाहिए। इसी तरह अमानतदारी का वस्फ़ इख़्तियार करने और उसे अपनी ज़िंदगी का अमली हिस्सा बनाने का बेहतरीन मौक़ा भी यही माह–ए–मुबारक है। अगर हमारे ज़िम्मे किसी का भी कोई हक़ हैकृचाहे वह कितना ही पुराना क्यों न हो तो हमें चाहिए कि रमज़ान का महीना ख़त्म होने से पहले उसे अदा कर दें, या जिस शख़्स से मामला मुतअल्लिक़ है उससे माफ़ी माँगकर अपना मामला बिल्कुल साफ़ कर लें।

आँहज़रत (स0अ0व0) के ये इरशादात हमें यह पैग़ाम देते हैं कि रमज़ानुल–मुबारक के क़ीमती लमहात को हक़ीक़त में मुबारक बनाने की ज़रूरत है। ऐसा न हो कि रमज़ान का महीना गुज़र जाए और उसकी बरकतों के तज़किरों तक हमारी बातें महदूद रह जाएँ, और वे हमारी ज़िंदगी में हक़ीक़त बनकर दाख़लि न हो सकें। हज़ूर (स0अ0व0) ने इस माह–ए–मुबारक की क़द्र न करने वालों के बारे में यहाँ तक फ़रमाया कि वह शख़्स ख़ाक–आलूद हो, जिसके सामने पूरा रमज़ान गुज़र जाए और उसकी मग़्फ़िरत न हो सके। ज़रूरत है कि हम अपना जायज़ा लें, सच्ची तौबा करें और रमज़ान के औक़ात को ईमान व एहतिसाब के साथ गुज़ारें। अगर हमने ऐसा किया, तो इंशा–अल्लाह यह रमज़ान बहुत मुबारक साबित होगा।

कुरआन में डूब जा ऐ मर्दे मुसलमां

मुहम्मद इस्माईल (तमिलनाडू)

इंसानी सोच एक अजीब चीज़ है। जिस चीज़ की मुहब्बत इंसान के दिल में बैठ जाए, उसके बारे में मालूमात हासिल करने में उसे लुत्फ़ आने लगता है। मिसाल के तौर पर आजकल बहुत से लोग फ़िल्मी अदाकारों की ज़ाती ज़िंदगी तक जानने के लिए बेचौन रहते हैं।

यहाँ एक अहम बात याद रखने की है कि जिस अल्लाह ने हमें पैदा किया, हमें ज़िंदगी अता की और एक मुक़र्रर वक़्त तक इस दुनिया के निज़ाम को चलाता रहेगा, और जिसने आसमानों और ज़मीन को पैदा फरमाया और उनकी निगहबानी फरमा रहा है, उसी अल्लाह को जानने में हम अक्सर ग़फ़लत का शिकार हैं। जबकि उसके लिए किसी बड़ी मशक्क़त की ज़रूरत नहीं। अल्लाह ने हमें कुरआन जैसी अज़ीम किताब अता फरमाई है। अगर हम उसे तवज्जोह से पढ़ें और समझें तो मारिफ़त–ए–इलाही हासिल करने में हमें कोई दुश्वारी नहीं होगी।

मिसाल के तौर पर आयतल कुर्सी में अल्लाह तआला की अज़ीम सिफ़ात बयान की गई हैं। उसमें बताया गया है कि अल्लाह का इल्म हर चीज़ को घेरे हुए है। ज़ाहिर है कि अल्लाह के तमाम उलूम का अहाता करना इंसान के लिए मुमकिन नहीं और न ही उसकी ज़रूरत है, लेकिन अल्लाह की सिफ़ात को समझने की कोशिश हमारे ईमान को मज़बूत करती है। जब हम आयतुल कुर्सी पर ग़ौर करते हैं तो हमें अल्लाह तआला की बेशुमार सिफ़ात का इल्म होता है। अगर हम इन सिफ़ात में ग़ौर करें तो उनकी वुसअत इंसान को हैरान कर देती है।

अल्लाह ही अव्वल है और वही आख़िर है। उसका न कोई आग़ाज़ है और न कोई इंतिहा। वह हमेशा से है और हमेशा रहेगा। उसे किसी पैमाने से नापा नहीं जा सकता और न ही उस पर फ़ना होने का कोई हुक्म लागू होता है।

अल्लाह तआला ने तख़्लीक़ की इब्तिदा क़लम से फरमाई। फिर उसे हुक्म दियाः लिखो। क़लम ने पूछाः क्या लिखूँ? अल्लाह ने फरमायाः जो कुछ मैं हुक्म दूँ और जो कुछ मेरे इल्म में है, सब लिख दो। चुनाँचे लौहे महफ़ूज़ में तमाम चीज़ें लिख दी गईं, मसलनः आसमान व ज़मीन की तख़्लीक़, इंसान की पैदाइश, उसके लिए दुनिया की नेमतें और हिदायत के लिए रसूलों का भेजा जाना।

इंसान की तख़्लीक़ से पहले अल्लाह तआला ने रूहों को पैदा फरमाया और उनसे अहद लियाः क्या मैं तुम्हारा रब नहीं हूँ? सब ने कहाः क्यों नहीं। फिर उन्हें हिदायत और रसूलों की पैरवी का हुक्म दिया गया, लेकिन दुनिया में आने के बाद बहुत से लोग उस अहद को भूल गए।

अंबिया अलैहिमुस्सलाम की ज़िंदगी हमारे लिए सब्र और इस्तिक़ामत की मिसाल है। नबी करीम (स0अ0व0) ने फरमाया कि इंसान जिस से मुहब्बत करता है, क़यामत में उसी के साथ होगा। हम नबी करीम (स0अ0व0) से मुहब्बत करते हैं और आप का नाम आते ही दरूद शरीफ़ पढ़ते हैं। अंबिया अलैहिमुस्सलाम ने दीन के लिए बेशुमार तकलीफ़ें बर्दाश्त कीं। इससे हमें सबक मिलता है कि दीन के रास्ते में मुश्किलात आना फ़ितरी बात है।

हज़रत बिलाल रज़ियल्लाहु अन्हु को गर्म रेत पर लिटाया गया और सीने पर भारी पत्थर रखा गया, मगर वह सिर्फ यही कहते रहेः अहद, अहद, अल्लाह एक है। हमें सोचना चाहिए कि अल्लाह और कुरआन का हमारे दिलों में क्या मक़ाम है? क्या हमने वाक़ई कुरआन पढ़ने और समझने की कोशिश की है?

आइए! हम कुरआन को अपनी ज़िंदगी का हिस्सा बनाएं। उसकी आयात को अपनी रोज़मर्रा ज़िंदगी में शामिल करें। अगर हम वाक़ई अल्लाह से मुहब्बत का दावा करते हैं तो हमें रोज़ाना कुरआन की तिलावत को अपनी ज़िंदगी का हिस्सा बनाना होगा। हमारी गुफ़्तगू और सोच कुरआन की तालीमात के मुताबिक होनी चाहिए। कुरआन मख़्लूक़ नहीं बल्कि कलाम–ए–इलाही है और उसकी तिलावत अल्लाह से मुहब्बत का अज़ीम ज़रिया है। रमज़ानुल मुबारक क़रीब है, आइए! इस बाबरकत महीने में ज़्यादा से ज़्यादा वक़्त कुरआन की तिलावत में गुज़ारें और रमज़ान के बाद भी कुरआन से अपना ताल्लुक मज़बूत रखें।

अल्लाह तआला से दुआ है कि वह हमें कुरआन को समझने, उसकी तिलावत करने और उस पर अमल करने की तौफ़ीक़ अता फरमाए। आमीन!

पश्चिमी देशों की इन्सान दुश्मनी

सैय्यद मुहम्मद मक्की हसनी नदवी

इंसान–दुश्मनी का शब्द सुनते ही निगाहों में एक काला साया छा जाता है। यह वह रवैया है जो मानवाधिकार, शांति और न्याय के बजाय ताक़त, शोषण और वर्चस्व को प्राथमिकता देता है। दुनिया के राजनीतिक परिदृश्य में पश्चिमी देशों, विशेष रूप से यूरोप और अमेरिका की छवि इस हैसियत से बहुत दाग़दार रही है कि पूरी इतिहास में उनकी अधिकतर नीतियाँ मानव रक्त से सनी रही हैं। अतीत में उपनिवेशवाद के ज़रिये लाखों जानें ली गईं, जबकि वर्तमान में संसाधनों की लालसा और भौगोलिक वर्चस्व के नाम पर युद्ध छेड़े जा रहे हैं।

पश्चिमी इंसान–दुश्मनी की जड़ें मध्ययुग तक जाती हैं, जब क्रूसेड (धर्मयुद्ध) मध्य–पूर्व पर आक्रमणकारी हुए। आज भी इराक, अफ़ग़ानिस्तान और फ़िलिस्तीन जैसे क्षेत्रों में अमेरिकी और यूरोपीय हस्तक्षेप पूरी मानवता का सबसे बड़ा त्रासदी है।

पश्चिमी देशों की इंसान–दुश्मनी का सबसे स्पष्ट अध्याय उपनिवेशवाद (Colonialization) है। पंद्रहवीं सदी से यूरोपीय शक्तियाँ, ब्रिटेन, फ़्रांस, स्पेन, पुर्तगाल और हॉलैंड ने अफ़्रीका, एशिया और अमेरिका को लूटना शुरू किया। क्रिस्टोफ़र कोलंबस द्वारा 1492 ई. में अमेरिका की खोज के बाद स्पेनियों ने लाखों मूल निवासियों की हत्या की। ऐतिहासिक दस्तावेज़ बताते हैं कि 1500 से 1600 के बीच केवल स्पेनिश उपनिवेशों में 90 प्रतिशत स्थानीय आबादी महामारियों, गुलामी और नरसंहार के कारण समाप्त हो गई।

ब्रिटेन का भारत पर कब्ज़ा 1757 ई0 की प्लासी की लड़ाई के बाद पूरा हुआ। ईस्ट इंडिया कंपनी ने बंगाल की कपास और मसालों को लूटा, जबकि 1770 ई0 के बंगाल अकाल ने एक करोड़ लोगों को मौत के मुँह में धकेल दिया। ब्रिटिश इतिहासकार माइकल स्कॉट एडम्स (Michael Scott Adams) ने "नॉकआउट ब्लॉक" में लिखा कि यह अकाल प्राकृतिक आपदा नहीं, बल्कि ब्रिटिश नीतियों का परिणाम था।

अफ़्रीका में कांगो पर बेल्जियम के राजा लियोपोल्ड द्वितीय (1885–1908) के शासन में मानव इतिहास का सबसे बड़ा नरसंहार हुआ। एक करोड़ अफ़्रीकियों को मौत के घाट उतार दिया गया, और उनके हाथ काटे गए ताकि राजा के सामने सबूत के रूप में पेश किए जा सकें। फ़्रांस ने अल्जीरिया में (1830–1962) पंद्रह लाख अल्जीरियाइयों को मार डाला, जैसा कि फ़्रांसीसी इतिहासकारों ने स्वीकार किया है। यह उपनिवेशवाद केवल लूट नहीं था, बल्कि सांस्कृतिक विनाश भी था, भाषाएँ मिटाई गईं, धर्मों पर प्रतिबंध लगाए गए।

विश्व बैंक के आँकड़े बताते हैं कि उपनिवेशवादी दौर में यूरोप की संपत्ति अफ़्रीका और एशिया से स्थानांतरित हुई, जो आज भी पश्चिमी अर्थव्यवस्था की नींव है। यदि यह इंसान–दुश्मनी नहीं है, तो और क्या है?

द्वितीय विश्व युद्ध (1939–1945) ने पश्चिमी इंसान–दुश्मनी को एक नया मोड़ दिया। 1945 ई0 में हिरोशिमा और नागासाकी पर अमेरिकी परमाणु बमों से दो लाख जापानी नागरिक मारे गए। यह पहला और एकमात्र परमाणु हमला था। ट्रूमैन प्रशासन ने दावा किया कि यह युद्ध समाप्त करने के लिए आवश्यक था, लेकिन दस्तावेज़ बताते हैं कि इसका उद्देश्य सोवियत संघ को डराना और युद्ध के बाद उसे सीमित करना था।

वियतनाम युद्ध (1955–1975) में अमेरिका ने एजेंट ऑरेंज जैसे रासायनिक हथियारों का प्रयोग किया, जिससे लाखों वियतनामी अपंग हुए। पेंटागन पेपर्स से पता चलता है कि अमेरिकी नेतृत्व को युद्ध की विफलता का अंदाजा था, फिर भी 58 हजार अमेरिकी और 30

लाख वियतनामी मारे गए।

अफ़्रीका में पुर्तगाल और बेल्जियम की उपनिवेशवादी लड़ाइयों (अंगोला, मोज़ाम्बीक) ने मानवाधिकारों का घोर उल्लंघन किया। शीत युद्ध के दौरान सीआईए के हस्तक्षेप, चिली में 1973 की अलेंदे सरकार का तख़्तापलट, ईरान में 1953 का मोसद्देक तख़्तापलट, ग्वाटेमाला (1954) में तानाशाहों की स्थापना इसके प्रमाण हैं। यह सब तेल और साम्यवाद को रोकने के नाम पर किया गया।

फ़िलिस्तीन में ब्रिटेन की बालफ़ोर घोषणा (1917) ने यहूदी राज्य की नींव रखी, जो आज तक अरबों पर अत्याचार का कारण बनी हुई है। ये सब उदाहरण हैं जहाँ ताक़त ने नैतिकता को रौंद डाला।

21वीं सदी में पश्चिमी इंसान–दुश्मनी ने नया रूप धारण किया, आतंकवाद के नाम पर युद्ध, ड्रोन हमले और आर्थिक प्रतिबंध। 11 सितंबर 2001 के हमलों के बाद अमेरिका ने अफ़ग़ानिस्तान (2001) और इराक (2003) पर हमला किया। लैंसेट स्टडी 2006 के अनुसार इराक में "सामूहिक विनाश के हथियारों" के झूठे आरोप पर दस लाख नागरिक मारे गए। अबू ग़रीब जेल और ग्वांतानामो बे में यातनाओं की तस्वीरों ने दुनिया को हिला दिया।

लीबिया में 2011 का नाटो हमला क़द्दाफ़ी को हटाने के नाम पर देश को तबाह कर गया, जहाँ आज तक गृहयुद्ध जारी है। सीरिया में पश्चिम समर्थित विद्रोहियों ने पाँच लाख नागरिकों की जान ली। फ़िलिस्तीन में इज़राईल की ग़ज़ा पर बमबारी (2023–2024) में साठ हज़ार से अधिक फ़िलिस्तीनी मारे गए, जो अमेरिकी हथियार आपूर्ति के बिना संभव नहीं था। संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्टें इसे युद्ध अपराध बताती हैं।

ड्रोन हमलों में पाकिस्तान, यमन और सोमालिया में दस हज़ार से अधिक नागरिक मारे गए। यूरोप की शरणार्थी नीतियाँ भूमध्य सागर में हज़ारों लोगों का डूबना इंसान–दुश्मनी की स्पष्ट मिसाल हैं। आर्थिक रूप से आईएमएफ़ और विश्व बैंक की शर्तें अफ़्रीका और लैटिन अमेरिका को ग़रीबी में धकेल रही हैं। ग्रीस के 2010 के आर्थिक संकट में यूरोपीय संघ की कठोर नीतियों से आत्महत्याओं में वृद्धि हुई।

आज भी संसाधनों की लालसा जारी है। अफ़्रीका में खनिज, यूरेनियम, तांबा और कोबाल्ट पर फ़्रांस, अमेरिका और यूरोप की कंपनियों का प्रभाव रहा है। हीरे की खानों और उनके वैश्विक वितरण पर ब्रिटेन की एक कंपनी का आज भी प्रभुत्व है।

संक्षेप में, इन प्राकृतिक संसाधनों का लाभ कंपनियों और शासकों को मिलता है, जबकि स्थानीय जनता बुनियादी सुविधाओं से भी वंचित रहती है। अमेरिकी कंपनियों का मध्य–पूर्व के तेल क्षेत्रों पर पूर्ण नियंत्रण है, जिसमें 2003 के युद्ध के बाद इराक भी शामिल है। रक्षा समझौतों के कारण खाड़ी देशों को पश्चिमी देशों की इच्छा के अनुसार चलना पड़ता है।

पश्चिमी मीडिया और हॉलीवुड इस्लामोफ़ोबिया फैलाते हैं, 9/11 के बाद मुसलमानों को आतंकवादी के रूप में दिखाया गया। सोशल मीडिया के एल्गोरिद्म नफ़रत को बढ़ावा देते हैं। यूरोप में दक्षिणपंथी पार्टियाँ फ़्रांस की नेशनल रैली और जर्मनी की ।क्किप्रवासियों के ख़िलाफ़ हमले करती हैं। यह मनोवैज्ञानिक युद्ध मानवीय संवेदना को समाप्त करता है।

पश्चिमी देशों की इंसान–दुश्मनी अतीत से वर्तमान तक जारी है उपनिवेशवाद से लेकर ड्रोन हमलों तक। लाखों जानें नष्ट हुईं, अर्थव्यवस्थाएँ तबाह हुईं और सांस्कृतिक क्षति हुई। हालाँकि यह पूर्ण नहीं है; आंतरिक आलोचनाएँ (जैसे ठस्ड आंदोलन) और वैश्विक दबाव परिवर्तन ला सकते हैं। मुस्लिम दुनिया को शांति और न्याय के लिए अपनी कूटनीतिक और आर्थिक शक्ति मज़बूत करनी होगी।

इनकी इंसान–दुश्मनी की कहानी इतनी लंबी है कि एक लेख में समेटना संभव नहीं। पश्चिमी देश चाहे जितना भी मानवता और शांति के ठेकेदार बनें, समय और मीडिया ने धीरे–धीरे उनके चेहरों से नक़ाब उतार दिया है। अब यह स्पष्ट है कि वे मूलतः मानवता के शत्रु और धन व शक्ति के पुजारी हैं, जो इन संसाधनों को पाने के लिए किसी भी हद तक जा सकते हैं।

कुरआन करीम
बेमिसाल कलाम

मुहम्मद अब्दुल्ला बिन हकीम हुजैफा अलीग

कुरआन अज़ीम खुदा–ए–हकीम का बेमिसाल कलाम है, जो सरचश्मा–ए–हिदायत और रहमत–ए–रब्बानी का मज़हर–ए–अतम है। यह एक मुअजिज़ा–ए–अबदी है जो हर दौर में अपनी हक़्क़ानियत का परचम बुलंद किए हुए है। इरशाद–ए–खुदावंदी है:

{إِنَّهُ لَكِتَابٌ عَزِيزٌ لَا يَأْتِيهِ الْبَاطِلُ مِنْ بَيْنِ يَدَيْهِ وَلَا مِنْ خَلْفِهِ تَنْزِيلٌ مِّنْ حَكِيمٍ حَمِيدٍ}

"बेशक यह एक ज़बरदस्त किताब है, इसके आगे और पीछे से बातिल नहीं आ सकता। यह खुदाए हकीम व हमीद की तरफ़ से नाज़िल किया गया है।" (फुस्सिलतः 41–42)

कुरआन तमाम बनी–नौ–ए–इंसान के लिए अबद तक फ़लाह–ए–दारेन का जामे हिदायतनामा है, जो {बिस्मिल्लाह} से लेकर {मिनल जिन्नति वन्नास} तक हरफ़–ब–हरफ़, लफ़्ज़–ब–लफ़्ज़ रब्ब–ए–काइनात की तरफ़ से नाज़िलशुदा है। यह कुरआन फ़रिश्ता–ए–वही जिब्रील अमीन के तवस्सुत से नबी आख़रिज़्ज़मां हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा (स0अ0व0) पर तक़रीबन २३ बरस के क़लील अरसे में नाज़िल हुआ, और आज चौदह सौ साल गुज़र जाने के बावजूद भी उसी तरह मुकम्मल, महफूज़ और ग़ैर–मुतबद्दल हालत में हमारे दरमियान मौजूद है और क़यामत तक यूँ ही बाक़ी रहेगा, इंशाअल्लाह। जैसा कि इरशाद–ए–बारी है:

{إِنَّا نَحْنُ نَزَّلْنَا الذِّكْرَ وَإِنَّا لَهُ لَحَافِظُونَ}

"बेशक हमने ही इस कुरआन को नाज़िल किया है और हम ही इसके हाफ़िज़ हैं।" (अल–हिज्रः 9)

कुरआन हकीम की तिलावत बाइस–ए–सवाब है, उसका सुनना दिलों को लताफ़त बख़्शता है, उस पर ग़ौर–ओ–फ़िक्र ज़ेहन को जला देता है और उस पर अमल करना हिदायत व सआदत–ए–दारेन अता करता है।

मतालिब व मआनी, फ़साहत व बलाग़त, तरकीब व तन्सीक़ और मअनवी गहराई के एतिबार से कुरआन मजीद लाजवाब है। यह बुलंद–तरीन अल्फ़ाज़ और अमीक़–तरीन मआनी का हामिल है और यही उसके मुअजिज़ा होने की दलील है। याद रखिए! मुअजिज़ा हमेशा वक़्त के हालात के मुताबिक नाज़िल होता है। मसलनः सय्यिदना हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम के ज़माने में तिब्ब व हिकमत का ग़लबा था, इसलिए उनका मुअजिज़ा नाबीना को बीना करना और मरीज़ को शिफ़ा देना था। इसी तरह जब नबी आख़रिज़्ज़मां हज़रत मुहम्मद (स0अ0व0) को मअबऊस फ़रमाया गया तो अरब में ज़बान व बयान और शेर–ओ–अदब का बोलबाला था, लिहाज़ा आप को कुरआन मजीद की सूरत में एक ऐसा ज़िंदा और दाइमी मुअजिज़ा अता हुआ, जो न सिर्फ़ फ़साहत व बलाग़त का शाहकार है बल्कि अपने ज़िंदगी–बख़्श और इंसान–साज़ पैग़ामात के ज़रिए रहती दुनिया तक के लिए एक नूरी मीनार है।

यही कुरआन की हक़्क़ानियत का ज़िंदा सबूत है कि अरब के बड़े–बड़े फ़सीह व बलीग़ शुअरा, उदबा और अहल–ए–ज़बान, बावजूद सख़्त कोशिशों और कुरआन के खुले चौलेंज के, उस जैसी एक भी सूरत न ला सके। इरशाद है:

"ऐ नबी! आप फरमा दीजिए कि अगर तमाम इंसान और जिन्नात इस बात पर इकट्ठा हो जाएँ कि इस कुरआन जैसा कोई कलाम ले आएँ, तो वे उसके जैसा नहीं ला सकते, अगरचे वे सब एक–दूसरे के मददगार ही क्यों न हों।"

कुरआन एक ऐसा मुअजिज़ा–ए–अबदी है जिसकी नज़ीर न आज तक कोई अहल–ए–इल्म पेश कर सका और न क़यामत तक पेश कर सकेगा। यह हमारा अकीदा है।

यह तो महज़ कुरआन करीम के चंद औसाफ़ व कमालात थे। इसके दीगर एअजाज़ात का अहाता तवालत के ख़ौफ़ से मुमकिन न हो सका।

अल्लाह तआला हमें कुरआन से हक़ीक़ी ताल्लुक जोड़ने, उसे समझने, उस पर अमल करने और उसे अपनी ज़िंदगी का नस्बुलऐन बनाने की तौफ़ीक़ अता फ़रमाए। आमीन या रब्बुल आलमीन!

रोज़े का मक़सद

मौलाना मुहम्मद नासिर नदवी (दुबई)

रोज़ा वही नफ़ा–बख़्श और सबब–ए–अज्र व सवाब है जो बुराइयों से रोक दे, नेकियों पर आमादा करे और नफ़्स में तक़वा पैदा कर दे। अल्लाह तआला फरमाता है:

"ऐ लोगो! जो ईमान लाए हो, तुम पर रोज़े फ़र्ज़ किए गए हैं, जिस तरह तुम से पहले लोगों पर फ़र्ज़ किए गए थे, ताकि तुम में तक़वा की सिफ़त पैदा हो।" (अल–बक़रहः 281)

रोज़ेदार के लिए ज़रूरी है कि अपने रोज़े को तमाम गुनाहों की आलूदगी से पाक रखे, कहीं ऐसा न हो कि उसके नसीब में सिर्फ भूख और प्यास ही आए और रोज़े के अज्र व सवाब से महरूम रह जाए। हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फरमायाः

"कुछ रोज़ेदार ऐसे होते हैं कि उनके रोज़े में से उन्हें सिर्फ भूख ही नसीब होती है।" (सुन्नन नसाई, सुन्नन इब्ने माजा)

एक दूसरी हदीस में है:

"जो शख़्स झूठ बोलना और उस पर अमल करना नहीं छोड़ता, तो अल्लाह को कोई ज़रूरत नहीं कि वह खाना और पीना छोड़ दे।" (बुख़ारी, मुस्नद अहमद)

यही वजह है कि सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम अजमईन और सलफ़ सालिहीन अपने रोज़ों की हिफ़ाज़त का ख़ास एहतिमाम करते थे। जिस तरह खाने–पीने से अपने आपको बचाते थे, उसी तरह गुनाह के कामों से भी अपने आपको दूर रखते थे।

हज़रत उमर रज़ियल्लाहु तआला अन्हु का क़ौल है:

"रोज़ा सिर्फ खाने–पीने से रुकने का नाम नहीं है, बल्कि झूठ, बातिल कामों और लग्वियात से रुकने का नाम रोज़ा है।"

हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर रज़ियल्लाहु अन्हुमा से मरवी है कि रसूलुल्लाह (स0अ0व0) ने इरशाद फरमायाः क़यामत के दिन बंदे के हक़ में खुद रोज़ा और क़ुरआन सिफ़ारिश करेंगे। रोज़ा कहेगा: ऐ मेरे रब! मैंने इस को खाने–पीने और नफ़्सानी ख़्वाहिशात से रोके रखा। इस बंदे के हक़ में मेरी सिफ़ारिश क़ुबूल फरमा। फिर अल्लाह के दरबार में क़ुरआन अर्ज़ करेगा: ऐ अल्लाह! मैंने इस को रातों में सोने से रोके रखा। इस बंदे के हक़ में मेरी सिफ़ारिश क़बूल फरमा। अल्लाह तआला का इरशाद होगा: "इन की सिफ़ारिश बंदे के हक़ में क़ुबूल है।"

क़ुरआन हकीम की तिलावत करना और उस से दिली लगाव रखना और रमज़ान के महीने में रोज़े रखना इस कदर क़ीमती आमाल और इंसान के लिए सबब–ए–इज़्ज़ व शरफ़ हैं कि मोमिन के गुनाहों की माफ़ी और अल्लाह की रज़ा के हुसूल का सबब बन सकते हैं।

रमज़ानुल मुबारक में रखे गए रोज़े और क़ुरआन की तिलावत या उसका सुनना अल्लाह को बहुत पसंद और निहायत मुबारक अमल है।

रमज़ानुल मुबारक के रोज़ों से इंसान की रूह पाकीज़ा और साफ़–सुथरी हो जाती है, जब कि क़ुरआन करीम की तिलावत से इंसान का वजूद आयात–ए–इलाही के नूर से मुनव्वर हो जाता है। इस तरह अल्लाह तबारक व तआला से बंदे का ताल्लुक मज़बूत होता है।

यह दोनों आमाल बंदे के हक़ में अल्लाह के रूबरू रोज़े क़यामत सिफ़ारिश करेंगे। रोज़ा परवरदिगार के हुज़ूर कहेगा कि ऐ अल्लाह! मैंने इसे खाने–पीने से रोके रखा और भूखा–प्यासा रहने पर मजबूर किया। तू इस के इस अमल को क़बूल फरमा और इस बंदे की लग्ज़िशों को माफ़ फ़रमा।

क़ुरआन करीम परवरदिगार के हुज़ूर इल्तिजा करेगा कि मैंने इस को रमज़ान में अपने साथ मशग़ूल रखा, इस को थकाया और सोने न दिया। ऐ रब करीम! इस के इस मुबारक अमल पर मेरी सिफ़ारिश क़ुबूल

फ़रमा और इसे अपनी रहमत की आग़ोश में जगह अता फरमा। परवरदिगार बंदे के हक़ में इन दोनों (कुरआन और रोज़ा) की सिफ़ारिश क़बूल कर लेंगे।

कुरआन व सुन्नत में आमाल–ए–सालिहा पर ऐसे गिरां–क़द्र अजर के वादे इस अम्र के साथ मशरूत हैं कि इन आमाल को उनके तमाम तक़ाज़ों और आदाब के साथ अदा किया गया हो। जब बंदा किसी इबादत को उसकी रूह के मुताबिक अदा करने की बिसात भर कोशिश करता है, तो बशरी कोताहियों, कमज़ोरियों और सग़ीरा गुनाहों को अल्लाह तआला अपनी शान–ए–करीमी से दरगुज़र फ़रमा कर शरफ़–ए–कुबूलियत से नवाज़ देता है। लिहाज़ा हमें मुकम्मल कोशिश करनी चाहिए कि रोज़े में ख़ालिक़–ए–दो जहाँ के अहकाम की अदना ख़िलाफ़वर्ज़ी न हो और हमें तिलावत व समाअत–ए–कुरआन का हत्तलमक़दूर एहतिमाम रखना चाहिए।

रब करीम से दुआ है कि ये दोनों आमाल यकसूई से अदा करने की तौफ़ीक़ नसीब फरमाए और हमारी इबादत इस क़ाबिल बनाए कि रमज़ान और कुरआन रोज़े क़यामत अल्लाह के सामने हमारी सिफ़ारिश करें।

किसी शख़्स या गिरोह का किसी दूसरे शख़्स या गिरोह के मुताल्लिक़ क़सदन किसी बात को हक़ीक़त के ख़िलाफ़ बयान करना झूठ है। मुख़्तलिफ वुजूहात की बिना पर कोई दुनियावी फ़ायदा हासिल करने या नुक़सान से बचने के लिए झूठ बोला जाता है। हर मुआशरे में झूठ को बहुत बुरा फ़ेल गर्दाना जाता है और इस से बचने की तल्क़ीन की जाती है।

अल्लाह तआला ने झूठ को कबीरा गुनाह क़रार दिया है। रसूलुल्लाह (स0अ0व0) के दौर में एक शख़्स आप के पास आया और कहने लगा कि मैं इस्लाम क़बूल करना चाहता हूँ लेकिन मुझ में बहुत सी बुराइयाँ हैं जिन्हें मैं छोड़ नहीं सकता। आप मुझे फरमाइए कि मैं कोई एक बुराई छोड़ दूं तो वह मैं छोड़ दूँगा। आप ने उस शख़्स से फ़रमाया कि झूठ बोलना छोड़ दो। उस शख़्स ने वादा कर लिया और झूठ बोलना छोड़ दिया। तो उसके झूठ छोड़ने के सबब उसकी तमाम बुराइयाँ छूट गईं।

झूठ बदतरीन गुनाह है, इंसानी मुआशरे की बरबादी का पेशख़ेमा बन चुका है। इंसान जब भी कुछ बोलता है तो अल्लाह के फ़रिश्ते उसे नोट करते रहते हैं, फिर उसे उस रिकॉर्ड के मुताबिक अल्लाह के सामने क़यामत के दिन जज़ा व सज़ा दी जाएगी। अल्लाह तआला का फ़रमान है:

"वह कोई लफ़्ज़ मुँह से नहीं निकालने पाता मगर उसके पास ही एक ताक लगाने वाला तैयार है।" (सूरह क़ाफ़: 18)

यानी इंसान कोई कलिमा अपनी ज़बान से निकालता है, उसे ये निगरां फ़रिश्ते महफ़ूज़ कर लेते हैं। फ़रिश्ते उसका एक–एक लफ़्ज़ लिखते हैं, ख़्वाह उस में कोई गुनाह या सवाब और ख़ैर या शर हो या न हो।

इमाम अहमद ने बिलाल बिन हारिस मुज़नी से रिवायत किया है कि रसूल अकरम (स00अव0) ने फरमाया:

"इंसान बाज़ औक़ात कोई कलिमा–ए–ख़ैर बोलता है जिस से अल्लाह तआला राज़ी होता है, मगर ये उसे मामूली बात समझ कर बोलता है। उसे पता भी नहीं होता कि उसका सवाब कहाँ तक पहुँचा कि अल्लाह तआला उसके लिए अपनी रज़ा–ए–दाइमी क़यामत तक के लिए लिख देता है। इसी तरह इंसान कोई कलिमा अल्लाह की नाराज़गी का (मामूली समझ कर) ज़बान से निकाल देता है, उसे गुमान नहीं होता कि उसका गुनाह व वबाल कहाँ तक पहुँचेगा। अल्लाह तआला उसकी वजह से उस शख़्स से अपनी दाइमी नाराज़गी क़यामत तक के लिए लिख देता है।" (इब्ने कसीर तल्ख़ीस, अज़: मआरिफुल कुरआन, जि: 8, स: 143)

झूठ बोलना गुनाह–ए–कबीरा है और ये ऐसा गुनाह–ए–कबीरा है कि कुरआन करीम में झूठ बोलने वालों पर अल्लाह की लानत की गई है। इरशाद–ए–रब्बानी है:

"लानत हो अल्लाह की उन पर जो कि झूठे हैं।" (आले इमरान: 61)

हालाते हाज़रा में इत्तिहाद की ज़रूरत

सैय्यद सैफ़ुद्दीन (लखनऊ)

आज के मुश्किल दौर में उम्मते मुस्लिमा को इत्तेहाद की बहुत ज़रूरत है, लेकिन यह इत्तेहाद ऐसा हो जो अकीदे को ख़ालिस रखे। अगर अकीदे के ख़राब लोगों से हाथ मिलाया जाएगा तो यह इत्तेहाद फ़साद और फ़ितने का सबब बन जाएगा। कुरआन मजीद में अल्लाह तआला फ़रमाता है:

(और अल्लाह की रस्सी को सब मिलकर मज़बूती से पकड़ लो और तफ़रक़ा न डालो) (आल–ए–इमरानः 103)

इत्तेहाद सिर्फ़ कुरआन, हदीस और सुन्नत की बुनियाद पर हो, जो अल्लाह के बंदों को सिर्फ़ अल्लाह की तरफ़ बुलाए, न कि दुनियावी मुफ़ादात की तरफ़। अकीदे की हिफ़ाज़त बग़ैर इत्तेहाद नामुमकिन है। नबी (स0अ0व0) ने फ़रमाया:

(बेशक उलेमा अंबिया के वारिस हैं।) (सुनन अबी दाऊद)

आज उम्मत मुख़्तलिफ़ गिरोहों में बंटी है, सियासी झगड़ों में फँसी है, लेकिन हक़ीक़ी इत्तेहाद तौहीद पर जमा होने वालों का है। अगर अकीदा मिलावट आलूद हो जाए तो यह इत्तेहाद झूठा और नुकसानदेह साबित होता है, जैसा कि तारीख़ गवाह है कि अकीदे की बुनियाद पर ही उम्मत मज़बूत या कमज़ोर हुई। कुरआन मजीद कहता है:

(मोमिन तो आपस में भाई हैं।) (अल–हुजूरातः 10)

यह भाईचारा सिर्फ़ ईमान और सुन्नत वालों का है।

बदक़िस्मती से आज लोग नाम का इत्तेहाद करते हैं मगर अकीदे को नज़रअंदाज़ कर देते हैं। नबी (स0अ0व0) ने ख़बरदार फ़रमाया:

(जिस शख़्स ने हमारे इस दीन के मामले में कोई ऐसी नई चीज़ ईजाद की जो उसमें से नहीं है तो वह मरदूद है।) (सहीह मुस्लिम)

इत्तेहाद का मतलब यह नहीं कि हर एक से हाथ मिलाएँ बल्कि किताब व सुन्नत पर मुत्तहिद हों। अल्लाह फ़रमाता है:

(तुम में से एक जमाअत ऐसी हो जो ख़ैर की तरफ़ बुलाए।) (आल–ए–इमरानः 104)

यह ख़ैर अल्लाह की इताअत है, न कि ग़लत अक़ाइद की हिमायत।

हज़रत उमर रज़ि अल्लाहु अन्हु के दौर में उम्मत मुत्तहिद थी क्योंकि सब सुन्नत पर चलते थे। नबी (स0अ0व0) ने फ़रमाया:

(मेरी सुन्नत को मज़बूती से पकड़ो।) (सुनन तिर्मिज़ी)

आज भी यही रास्ता है, अकीदा दुरुस्त रखो, फिर इत्तेहाद करो। कुरआन करीम का हुक्म है:

(ऐ ईमान वालो! अल्लाह के मददगार बनो।) (अस–सफ़: 14)

यह इत्तेहाद अल्लाह की नुसरत लाएगा। जब सहाबा मुत्तहिद हुए तो फ़ारस और रोम जैसी सल्तनतों को हरा दिया। आज भी उसी कुरआन व हदीस पर लौट आओ, ग़लत अक़ाइद से दूर रहो, बिदअत छोड़ो। अल्लाह फ़रमाता है:

(अल्लाह और उसके रसूल की इताअत करो।) (आल–ए–इमरानरू 32)

इत्तेहाद उसी इताअत से जन्म लेगा। अमल का

आगाज़ घर से करो, बच्चों को सही अकीदा सिखाओ, मस्जिद में कुरआन व हदीस की महफ़िल लगाओ। सियासी जमाअतें छोड़ो, अल्लाह की जमाअत जॉइन करो। हदीस में है:

(अल्लाह का हाथ (नुसरत) जमाअत के साथ है।) (सुनन तिर्मिज़ी)

कुरआन मजीद में इरशाद है:

(अल्लाह उनसे मोहब्बत करता है जो उसकी राह में सफ़ बाँधकर लड़ते हैं।) (अस–सफ़: 4)

उम्मत को यह समझना होगा कि अकीदे के बग़ैर इत्तेहाद फ़ितना है। तारीख़ से सबक लो, ख़िलाफ़त के ज़वाल की वजह तफ़रक़ा और बिदअतें थीं।

आज इंटरनेट और सोशल मीडिया पर ग़लत बातें फैल रही हैं, मगर कुरआन की रोशनी में देखो तो अल्लाह फ़रमाता है:

(जिसने ज़र्रा बराबर भी भलाई की होगी वह उसे देख लेगा।) (अज़–ज़िलज़ाल: 7)

इत्तेहाद का हर क़दम अल्लाह की तरफ़ हो। हर मुसलमान का फ़र्ज़ है कि अकीदे की हिफ़ाज़त करे। नबी (स0अ0व0) ने फ़रमाया:

(तुम्हारा खून, माल और इज़्ज़त एक दूसरे पर हराम है।) (मुस्लिम)

यह हुरमत सिर्फ़ तौहीद वालों पर है। ग़लत अक़ाइद वालों से फ़ासला रखो, फिर मुत्तहिद हो। कुरआन का वादा है:

(अल्लाह ने मोमिनों से वादा किया है कि उन्हें ज़मीन में ख़लीफ़ा बनाएगा।) (अन–नूर: 55)

इस इत्तेहाद से मआशी, फ़ौजी और अख़लाक़ी ताक़त आएगी। अल्लाह हमें तौफ़ीक़ दे कि कुरआन व सुन्नत पर जमा हों। हर मुसलमान दुआ करे:

"या अल्लाह! उम्मत को मुत्तहिद कर दे, अकीदे की बुनियाद पर। अमल करो, सब्र करो, इंशाअल्लाह फ़त्ह ज़रूर मिलेगी। आमीन!"

आलम-ए-रूहानियत का मौसम-ए-बहार

मौलाना अब्दुल माजिद दरियाबादी (रह0)

"रमज़ानुल मुबारक का महीना सुस्ती और काहिली, पड़े रहने और अंगड़ाइयां लेते रहने का महीना कभी भी न था, आख़िरी हफ़्ते में चुस्ती और मुस्तैदी अपने हद्दे कमाल को पहुंच गई, महीने का पहला अशरा रहमत का था, "अव्वलुहु रहमुतुन" तमामतर नेकी के कुवा को तहरीक होती रही, दूसरे अशरे से नताएज ज़ाहिर होने लगे, रूह में जिला आ गयी, "औसतुहू मग़्फ़िरतन" तीसरा अशरा निचोड़ का है, रही–सही कसाफ़तें भी दूर हो जाएंगी, एक–एक नया फ़र्द और सारी की सारी उम्मत निखर जाएगी, संवर जाएगी, सुधर जाएगी, "व आख़िरतुहू इत्कुन मिन्नारि" हदीस में आता है कि उस फ़ौज का सरदारे आज़म आख़िरी अशरे में तमामतर वक़्फ़े इबादत हो जाता था, ताल्लुक़ाते ख़ल्क़ से वक़्ती इन्क़िताअ के साथ मसरूफ़ियत व यकसुई बराहेरास्त ख़ालिक़ व फ़ातिर के साथ हो जाती थी।

ख़बर दी है उसने जिसकी दी हुई हर ख़बर सच और सच्ची ही निकली है कि इसी मश्क़–ओ–रियाज़त वाले महीने "शहरुस्सब्र" इसी सब्र व हमदर्दी वाले महीने "शहरुल मवासात" के आख़िरीर अश्रे में कोई रात ऐसी भी आती है जो साल की हर रात, उम्र की हर रात से बढ़कर क़ीमती और क़ाबिले क़द्र होती है, ढूंढो उसे आख़िर की पांच रातों में, अल्लाह वाले इसकी तलाश में सारी–सारी रात जागकर गुज़ारते हैं और दिनभर की भूख–प्यास के साथ–साथ रात की नींद की कुर्बानी भी बेतकल्लुफ़ और ख़ुशी से अपने अनदेखे मौला के हुज़ूर पेश कर देते हैं।"

(सच्ची बातें: 191–192)

मौसम-ए-बहार

मुहम्मद मुसअब नदवी

चाँद अपने सफ़र की सालाना गर्दिश को तय करते हुए एक बार फिर से रमज़ानुल मुबारक को उसकी तमाम बरकतों और रहमतों के साथ ले आया है। रमज़ानुल मुबारक नुज़ूल–ए–कुरआन की सालगिरह है। क़ाबिले मुबारकबाद हैं वे तमाम हज़रत जिन्होंने इस माहे मुबारक को एक बार फिर से पा लिया, लेकिन हाँ, असल मुबारकबादी तो तब है जब इस महीने की बेपनाह रहमतों और बरकतों से अपने दामन को भर लिया जाए।

मौसम बहार शबाब पर है, रूहानियत का जश्न आम है, अफ़्व–ओ–मग़फ़िरत का परवाना तक़सीम हो रहा है, बस आपकी ज़रा सी नदामत दरकार है। जन्नत का टिकट फिर से सस्ता हो गया है, बस आपकी थोड़ी सी तवज्जोह मतलूब है। इबादतों का सवाब सत्तर गुना बढ़ा दिया गया है, रहमतों की मूसलाधार बारिश होने लगी है, बरकतों के फूल फिर से खिलने लगे हैं। चारों जानिब नूर की किरनें फैली हुई हैं, वीरान चमन में नरगिसे हिदायत लहलहाने लगी है। आपके सामने एक हमवार, कुशादा शाह राह रोशनी से जगमगा रही है। बड़ी नाकदरी और हरमाँ नसीबी होगी अगर आप अब भी इस रोशन शाह राह को छोड़कर तंग व तारीक गलियों में भटकते रहें।

नफ़्स को क़ाबू में रखने का वक़्त आ गया है। थोड़ी सी मशक़्क़त है, पर बदला कृ "अस्सौमु ली व अना अज्ज़ी बिही" बदला देने वाला एलान कर रहा है कि रोज़ा मेरे लिए है और मैं खुद उसका बदला दूँगा। और एक रिवायत में "उजज़ा बिही" का लफ़्ज़ है अल्लाहु अकबर! यानी अल्लाह कह रहा है, मैं खुद उसका बदला बन जाऊँगा, और जिसका बदला खुदा खुद बन जाए, उसे और क्या चाहिए!

फिर रमज़ानुल मुबारक का महीना सोई हुई तबीयतों को जगाने, बुझें हुए दिलों को गर्माने, आतिशे मुहब्बत को भड़काने और दबी हुई चिंगारियों को उभारने का सामान पैदा करता है। इसी माहे मुबारक के आख़िरी अशरे में लैलतुल क़द्र भी है। यह आख़िरी अशरा पहले के दो अशरों से बेहतर है। लैलतुल क़द्र के बारे में अल्लाह तआला फ़रमाता है कि यह रात हज़ार महीनों से बेहतर है।

भाइयो! हमारे हाथ में सिर्फ़ हाल है। माज़ी गुज़र चुका है और मुस्तक़बिल का पता नहीं है। हम इस मौक़े को ग़नीमत समझते हुए दिन और रात अल्लाह तआला की इबादत करने की कोशिश करें, तो यह हमारे माज़ी के गुज़रे हुए गुनाहों का कफ़्फ़ारा और मुस्तक़बिल में नेक आमाल करने की तौफ़ीक़ का ज़रिया बनेगा। खुश नसीब है वह जो इस क़ीमती मौक़े से खूब फायदा उठा ले, साबिका कोताहियों पर तौबा करते हुए नए सिरे से एक साफ़–सुथरी पाकीज़ा ज़िंदगी गुज़ारने का इरादा कर ले।

इस महीने का सब्र से भी बड़ा गहरा वास्ता है, और सब्र का बदला जन्नत है। कहीं ऐसा न हो कि हम रोज़े के नाम पर बेसब्री का मुज़ाहिरा करें, ज़रा–ज़रा सी बात पर गुस्सा हो जाएँ, बल्कि अपने नफ़्स को तमाम तरह की लग़्वियात और ख़ुराफ़ात से बचने पर मामूर करें।

यह ग़मगुसारी और ग़मख़्वारी का भी पैग़ाम साथ लाया है। हम जो कुछ भी अपने लिए इफ़्तार में तैयार करें, उसमें से कुछ न कुछ ग़ुरबा और मसाकीन के लिए भी ज़रूर तैयार कर लें।

यह माहे मुबारक सुलह व सफ़ाई का भी दरस एक बार फिर देने आया है। जो रूठे हों उन्हें हम मना लें, झगड़ों से एहतिनाब करें। आप (स0अ0व0) ने फ़रमाया: अगर कोई शख़्स तुमसे लड़ाई करना चाहे तो उससे कह दो कि मैं रोज़े से हूँ।

फिर रमज़ानुल मुबारक का महीना

अफ़्व–ओ–मग़फ़िरत, सरापा रहमत व बरकत का महीना होने के साथ–साथ इज़्ज़त व सरबुलंदी, शान व शोक़त, फ़त्ह व नुसरत का भी महीना है। इस माहे मुबारक में होने वाले अक्सर ग़ज़वात कामयाबी व कामरानी से हमकिनार हुए हैं। "यौमुल फ़ुरक़ान" (जंगे बद्र) रमज़ानुल मुबारक में पेश आया। इसी मुबारक महीने में मक्का, फ़िलस्तीन, उंदलुस वग़ैरह फ़तह हुए हैं।

तो हम अल्लाह से दुआ करें कि ऐ इलाहुल आलमीन! इस माहे मुबारक को हर तरफ़ ज़िल्लत व रुसवाई में घिरे हुए मुसलमानों के लिए इज़्ज़त व सरबुलंदी और उनकी अज़मत का महीना बना दे। बातिल को ज़लील व रुसवा कर दे, हक़ को ग़ालिब कर, मुसलमानों के ख़िलाफ़ चाल चलने वालों की हर तदबीर को नाकाम बना दे। हक़ की राह में क़ुर्बानी देने वालों की क़ुर्बानियों को क़ुबूल फ़रमा ले और इस माहे मुबारक को पूरी उम्मते मुस्लिमा के लिए माहे फ़ुरक़ान बना दे।

हम इस तरह की दुआओं का भी एहतिमाम करें, तिलावत–ए–कलाम की कसरत करें, साथ ही उसे समझने का भी मामूल बनाएँ।

ग़रज़ यह कि रमज़ान सिर्फ़ सहरी व इफ़्तारी का नाम नहीं, महज़ भूखे और प्यासे रहने का नाम नहीं, बल्कि यह एक तर्बियती कोर्स है, जिससे मुसलमानों को हर साल इस लिए गुज़ारा जाता है ताकि इंसान मेहनत व मशक़्क़त, रियाज़त व मुजाहदा, दुआ व मुनाजात के ज़रिए अपने अख़लाक़े फ़ासिदा को कुचल डाले और उम्दा अख़्लाक़ व औसाफ़ को अपने अंदर जला बख़्शे। बंदगी व फ़रमाँबरदारी का शौक़ और गुनाहों से परहेज़ का जज़्बा पैदा हो। दिल में ताअत व बंदगी, ख़ुदा से शर्म व हया की वह शम्अ रोशन हो जो इंसान को रात की तारीकी, सहरा व बियाबान के वीराने में भी ग़लत कामों से महफ़ूज़ रख सके। यही रोज़े का असल मक़सद है, कातिबे सौम की यही मंशा है।

क़ाबिले सद मुबारक हैं वे जो इस तर्बियती कोर्स से ठीक–ठीक गुज़र जाएँ और उसकी रहमतों व बरकतों से पूरा–पूरा फ़ैज़ उठा लें। महरूम व बदनसीब हैं वे जो इन मुबारक लम्हात को ग़फ़लतों में गुज़ार दें।

इस्लाम की हक़ीक़त

मौलाना अबुल कलाम आज़ाद (रह0)

"हर शै की अस्ल हक़ीक़त वही हो सकती है जो उसके नाम के अन्दर मौजूद हो, दीने इलाही की हक़ीक़त लफ़्ज़–ए–इस्लाम के माने में पोशीदा है। लफ़्ज़–ए–इस्लाम के माने इतिआत–ओ–इन्क़ियाद, गर्दन और किसी चीज़ के हवाले कर देने के हैं" पस इस्लाम की हक़ीक़त भी यही है कि इन्सान अपने पास जो रखता है, ख़ुदा तआला के हवाले कर दे, इसकी तमाम क़ूव्वतें, उसकी तमाम ख़्वाहिशें, इसके तमाम जज़्बात, उसकी तमाम महबूबियात, ग़र्ज़ यह कि सर के बालों से लेकर पाँव के अंगूठे तक जो कुछ उसके अन्दर है और जो कुछ अपने से बाहर रखता है, सबकुछ एक लेने वाले के सुपुर्द कर दे और अपनी जिस्मानी और दिमाग़ी ताक़तों के साथ ख़ुदा के आगे झुक जाए और एक बार हर तरफ़ से कटकर और अपने तमाम रिश्तों को तोड़कर इस तरह गर्दन रख दे कि फिर कभी न उठे। नफ़्स की हुकूमत से बाग़ी हो जाए और अल्लाह के हुक्म का मुतीअ व मुन्क़ाद, यही वह हक़ीक़त–ए–इस्लामी का क़ानूने फ़ितरी है जो तमाम कायनाते आलम में जारी व सारी है। उसकी सल्तनत से ज़मीन–ओ–आसमान का एक ज़र्रा भी बाहर नहीं। हर चीज़ जो इस हयात–कदा–ए–आलम में वजूद रखती है, अपनी आमाले तबीई के अन्दर इस हक़ीक़ते इस्लामी की एक मुजस्सम शहादत है, कौन है जो उसकी इतिआत और इन्क़ियाद से आज़ाद है और उसके सामने से अपने झुके हुए सर को उठा सकता है?!

(क़ुरआन का क़ानून–ए–उरूज–ओ–ज़वालः 29)

इल्हाद का तूफ़ान

असबाब और हल

मोहम्मद नज्मुद्दीन नदवी

मजहब–ओ–अक़्ल की मारका–आराइयों की दास्तान हमेशा कही और दिलचस्पी से सुनी गई है और दौरे–जदीद में मग़्रिबी नए फलसफा और मुफक्किरीन–ए–यूरप ने दहरियत की राह हमवार की, बाज़ ने तो खुदा के वजूद ही का इंकार कर दिया या कम अज़ कम शक का बीज ही बो दिया और यह कहा कि खुदा के वजूद और इंकार दोनों पर हम कोई दलील नहीं पाते और हम सिर्फ उस ख़बर पर ईमान ला सकते हैं जो तजुर्बा–ओ–मुशाहिदा के तहत हो। जदीद तहज़ीब–ओ–फ़लसफ़ा और इसकी तरक्की व नतायज पर बह–नज़रे–गाइर गौर किया जाए तो उसूली और कुल्ली तौर पर मुज़िर्रत–रसां हैं और जदीद तहजीब–ओ–फ़लसफ़ा के मज़ाहिर–ओ–फुरूत भी आला मेयार पर होकर भी रूहानी हकीकतों से आगाही व मारिफत अता करने में बिल्कुल नाकाम–ओ–नाशाद हैं। सनअती उरूज और ज़रायती तरक्की के बावजूद आला पैमाना पर जलवा–नुमा होकर भी इल्म–ओ–मारफत के असल गोशों से शुऊरी या गैर–शुऊरी तौर पर पूरी तरह गफलत बरती गई। हमें इस नतीजा तक पहुंचने में देर नहीं लगेगी और यह हकीकत नज़र आएगी कि माद्दी तरक्की की खुशगवार बहारें अक्सर व बेश्तर हकीकी व रूहानी मुतमद्दिन दुनिया की आफरीनिश में और एक लहलहाती फसल की आब्यारी में पूरी तरह नाकाम–ओ–नामराद हुई हैं।

असरे–नौ में जदीद फ़लसफ़ा के अलमबरदारों और मुनकिरीन व मुलहिदीन की इल्हाद व लादीनी के वसीअ मफहूम व मुराद के पस–मंज़र में तीन किस्में बताई जाती हैं जिनके मुरव्वजा नाम कुछ इस तरह हैं:

(१) इल्हाद–ए–मुतलकः इसका माना व मुराद है; इल्म व मारिफ़त। मुलहिदीन का यह तबका वजूद–ए–बारी तआला के इंकार व नफी में सख़्त रवैया का हामिल है। रूह, जन्नत व दोज़ख़, फरिश्ता व जिन और मा–बादुल–तबियाती उमूर में अदम–ए–यकीन इसकी पहचान है। इंसान की तख़्लीक और आफ़रीनिश–ए–कायनात में किसी खुदा का कमाल नहीं, यह अज–खुद वजूद में आकर कानून–ए–फितरत पर चल रहे हैं। इस फ़लसफ़ा के नादान दोस्तों और पैरोकारों व मुरीदीन को ळदवेजपब ।जीमपेज कहलाते हैं।

(२) ला–अद्रियतः मज़हबी उमूर और मा–बादुल–तबियात व गैबी हकायक़ की बहसों में पड़कर हंगामा बरपा करने से गुरेज़ करना। इस फिक्र व फ़लसफ़ा के हामिलीन वजूद–ए–बारी तआला व अदम–ए–वजूद की बहसों में दाखिल होकर इसकी गिरह–कुशाई नहीं करते। अल–मुख़्तसर यह कि यह तबका मज़हब और मज़हबी उमूर व गैबी हकायक़ की टक्कर से बचता है और इसी में आफ़ियत महसूस करता है। इस तबक़े को ।हदवेजपबपेउ कहा जाता है।

(३) फ़ितरी खुदा परस्तीः एक फ़ल्सफियाना व एतिकादी नज़रिया है कि खुदा मौजूद है और इसी ने कायनात की तख़्लीक फरमाई, इसके बाद इससे कोई और किसी किस्म का इर्तिबात नहीं और आलम का निज़ाम यूं ही कानून–ए–फितरत के मुवाफिक गर्दिश कर रहा है, क्योंकि वह कायनात के निज़ाम–ओ–ज़ब्त से बे–नियाज़ होकर गफ़लत में है। इस फ़िक्र व फ़लसफ़ा के मानने वालों और मुरीदों को क्मपेउ कहा जाता है। इस गिरोह का इस पेश–कर्दा नज़रिया से मक़सूद यह है कि अक़्ल और फितरते असल हैं। तौहीद, रिसालत, आख़िरत और वही–ए–इलाही की रहनुमाई से इंकार है और फलसफा–ए–अख़्लाक में रज़ाइल व ख़साइल की शरह बगैर वही के अक्ल–ओ–खिरद ही करेगी। मुजद्दिद अल्फ–ए–सानी इमाम अहमद सरहिंदी रह. ने एक मकतूब में रकम फरमाया हैः "अक्ल इस मसला में अगर काफी होती तो यूनान के फ़लसफ़ियों जिन्होंने अक्ल को अपना मुक्तदा बनाया था, गुमराही के बियाबान में न भटकते और हक तआला को औरों के मुकाबला में ज्यादा पहचानते, हालांकि अल्लाह तआला की ज़ात व सिफ़ात के मामला में जाहिल तरीन शख्स यही लोग हैं कि उन्होंने हक तआला सुब्हानहु को बेकार और मुअत्तल समझ लिया।" (मकतूबातः 3/23)

हम अब मुलहिदीन व मुनकिरीन के नज़रिया और तरीका–ए–इस्तिदलाल को पेश–ए–नज़र रखकर यहां इंतिहाई इख्तिसार के साथ इल्हाद व दहरियत के अस्बाब पर कलाम करेंगे। अगर हम गौर व फिक्र से काम लें तो चंद बातें बादी–उन–नज़र में हमें लादीनी व इल्हाद के अस्बाब के तौर पर मालूम होती हैं जिनको बिल–तर्तीब इस तरह पेश किया जा सकता है:

(१) तसव्वुर–ए–इलाह (२) मज़हब का तसव्वुर (३)

मसला–ए–तकदीर (४) मसला–ए–खैर–ओ–शर (५) मज़हब का तसव्वुर–ए–इल्म व अक्ल (६) मज़हब और आला इंसानी अख़्लाकी कदरें। इनमें से हर एक पर रोशनी डाली जाती है ताकि इनके मंज़र व पस–मंज़र की फहम व इदराक में सहूलत हो।

(१) तसव्वुर–ए–इलाहः इस जहाने–आब–ओ–खाक में सिर्फ मुलहिदीन व मुनकिरीन का एक गिरोह है जो वजूद–ए–बारी तआला का इंकार करने पर तुला हुआ है। निहायत बेबाकी से इसका यह कहना है कि वजूद–ए–बारी तआला हरगिज़ कोई वाक़यी चीज़ नहीं, यह एक वहमी शय है जिसे इंसानी ख़्याल व ज़हन ने आगाज़–ए–फितरत में इससे मरऊब होकर इख़्तिरा कर लिया था। इस फर्जी खुदा ने ऐसा मुकाम पा लिया कि निज़ाम–ए–कायनात की डोरी इसी के हाथ में थमा दी और यह खुश–फहमी पैदा कर ली कि जो कुछ होता है इसी की चाहत व इरादा से होता है, इसके इरादे के बगैर कुछ भी नहीं होता। इस गिरोह की अक्ल–ओ–खिरद की ना–रसाई और कोताह–फहमी यह भी है कि यह कहता है कि कायनात में तमाम अर्जी व समावी अशिया की असल दो चीज़ें हैं जिन्हें माद्दा और इसकी हरकत से ताबीर किया जाता है और अज़ल से यह दोनों तलाज़ुम के साथ मौजूद हैं क्योंकि यह गैर–मुमकिन है कि दोनों में जुदाई हो या एक दूसरे के बगैर हो।

इसके बिल–मुकाबिल दुनिया के तमाम मज़ाहिब व अदयान में तसव्वुर–ए–इलाह मौजूद है और इस पर सब का इत्तिफाक व इज्मा है। दुनिया कभी भी सदा–ए–तौहीद से खाली नहीं रही है और तारीख के किसी भी दौर में इंसानी मुआशरों में नज़रिया–ए–शिर्क और इसके निज़ाम को कायम रखने के लिए आज़ाद नहीं छोड़ा गया। आगे बयान किया जाएगा कि निज़ाम–ए–शिर्क को निज़ाम–ए–तौहीद के मुकाबला में गलबा दौरे–खत्मे–नुबुव्वत से पहले रहा और कुछ लोग बंदगान–ए–खुदा को फिक्री व एतिकादी और अमली तौर पर एक अल्लाह की बंदगी से हटाकर बहुत से खुदाओं के सामने जबीं–साई कराते रहे और अल्लाह के निज़ाम–ए–तौहीद के मुकाबला में शिर्क व कुफ्र को इंसानी ज़हन व कलब पर मुसल्लत किया जाता रहा। बहरहाल हमारे पास तारीखी और इल्मी तौर पर जो मुस्तनद तरीन दलील व बुरहान दस्तयाब है जिस पर एतिमाद किया जाना है वह सहीफा–ए–इलाही है जिस पर चौदह सौ साल गुज़रने पर भी इसके एक हर्फ का भी ना–दरुस्त होना साबित नहीं हुआ। कुरआन–ए–मुहक्कम हमें बताता है कि इंसान सरापा मोहताज है, इसलिए इसको एक ऐसी हस्ती की ज़रूरत है जिसकी शफकत व मोहब्बत मां–बाप से इंतिहाई ज्यादा हो और इसमें रहमत व हिकमत दोनों औसाफ पाए जाते हों जो इसकी परवरिश के लिए निहायत ना–गुज़ीर है। यह वह हकीकी बात और इल्मी नज़रिया भी है जिसमें इंसानी अक्ल–ओ–खिरद खुले अंदाज़ में गवाही देती है कि अन्फुस व आफाक में वजूद–ए–बारी तआला पर बेशुमार मज़बूत दलाइल और ठोस बराहीन हैं जो वजूद–ए–बारी तआला को साबित करते हैं। कुरआन–ए–मुहक्कम में साफ कह दिया गया हैः (हम इनको अपनी निशानियां दिखाएंगे दुनिया में और खुद इनकी जानों में, यहां तक कि यह हकीकत इन पर खुल जाएगी कि वह हक है, क्या तुम्हारा परवरदिगार हर चीज़ पर गवाह होने के लिए काफी नहीं?) (हा–मीम सजदाः ५३)

इंसानी मुआशरा के आगाज़ में इंसानों के अफराद से तश्कील–कर्दा मुआशरा वहदानियत पर कायम हुआ था। कुरआन–ए–मुहक्कम में खुले लफ्ज़ों में कहा गया हैः "लोग (सब के सब) एक ही उम्मत थे तो अल्लाह ने अंबिया भेजे, बशारत देने वाले और डराने वाले और उनके साथ ठीक–ठीक किताब उतारी ताकि वह लोगों के दरमियान उन चीज़ों का फैसला कर दे जिनमें वह इख्तिलाफ रखते थे और इसमें इख़्तिलाफ तो उन्हीं लोगों ने किया जिनको किताब मिल चुकी थी महज़ आपस की ज़िद में, खुली निशानियां उनके पास आने के बाद भी, तो अल्लाह तआला ने अपने हुक्म से ईमान वालों को वह ठीक–ठीक रास्ता चलाया जिसमें वह इख्तिलाफ कर रहे थे और अल्लाह जिसको चाहता है सीधा रास्ता चला देता है।" (अल–बकरहः 213)

और यह कि तमाम अंबिया और रसूलों का नसबुल–ऐन और मिशन एक ही रहा, इसमें खुलकर तौहीद–ए–रब की दावत और इस पर हर एक नबी व रसूल को मामूर किए जाने का ज़िक्र है और यह कि रसूलों और नबियों ने अल्लाह की हिदायत के मुताबिक इंसानी कुलूब व अज़हान में अकीदा–ए–तौहीद को रासिख किया। एक जगह इरशाद हैः "हमने हर उम्मत में कोई न कोई रसूल इस पैग़ाम के साथ भेजा कि अल्लाह की बंदगी करो और तागूत से बचो, तो किसी को अल्लाह ने राह दी और किसी के सर गुमराही थप गई, तो ज़मीन में फिरो फिर देखो कि आकर झुठलाने वालों का अंजाम कैसा हुआ?" (अन–नहलः 36)

एक अज़ीम क़ुर्बानी की ज़रूरत

मुहम्मद अरमुग़ान बदायूंनी नदवी

इसमें शुब्हा नहीं कि हर इन्सान पर अल्लाह तबारक व तआला की बेशुमार नेमतें और एहसानात हैं, जदीद साइंस की रोशनी में अगर सिर्फ़ जिस्मानी निज़ाम और उसके आज़ा–ए–रईसा ही के ख़्वास का मुताला किया जाए तो हर साहिबे अक़्ल यह गवाही देने पर मजबूर हो जाएगा कि

"ऐ हमारे रब! तूने इनको यूँ ही नहीं पैदा किया।" (आल इमरानः 191)

सच्ची बात यह है कि अगर आदमी का ज़हन व दिमाग़ अनफ़ुस व आफ़ाक़ की इन निशानियों पर ग़ौर करने लगे, फिर सबसे बढ़कर वह अपनी ज़ात पर ग़ौर करे तो उसके अंदर एक तज़क्कुर और ध्यान की कैफ़ियत पैदा होगी और उसके जज़्बात अंदर से इस बात पर मुहीमेज़ करेंगे कि दिल में अल्लाह की ख़शियत पैदा होनी चाहिए और आमाल में इस बात का लिहाज़ होना चाहिए कि अल्लाह तबारक व तआला हमा वक़्त हमारी निगहबानी फ़रमा रहा है। यही वह सिफ़त है जिसका तज़्किरा अल्लाह तआला ने कुरआन में यूँ फ़रमाया है कि

"बिलाशुब्ह अल्लाह से उसके वही बंदे डरते हैं जो इल्म रखते हैं।" (फ़ातिरः 28)

क़ुर्बान जाएँ अल्लाह के नबी अलैहिस्सलातु वस्सलाम पर जिन्होंने भटकी हुई इंसानियत को सही सम्त अता की और मुर्दा दिलों की मसीहाई का फ़र्ज़ अंजाम दिया। आप (स0अ0व0) ने न सिर्फ़ यह कि ख़ालिक़ को मख़लूक़ से जोड़ने का काम किया बल्कि इस दुनियाए इंसानियत को एक ऐसा कामिल व मुकम्मल निज़ाम भी अता फ़रमाया जो क़यामत तक के लिए काफ़ी है और हर इंसान की तामीर व तश्कील और उसकी फ़लाहयाबी का राज़ उसमें मुज़्मिर है।

आप (स0अ0व0) के इरशादात व फ़रमूदात का इम्तियाज़ यह है कि उनके अंदर हर तबक़े और हर ज़माने के लोगों के लिए रहनुमाई और नफ़ा का सामान है, मगर अफ़सोस की बात है कि दुनिया के फ़लासिफ़ा और मुफक्किरीन अपने बुग़्ज़ व इनाद की बिना पर और मुसलमान ख़्वाब–ए–ग़फ़लत में मस्त होने के सबब मोहसिन–ए–इंसानियत (स0अ0व0) की इंसानियत–नवाज़ तालीमात से अपनी अमली ज़िंदगी में बेएतनाई बरतते नज़र आते हैं, जिसका नतीजा यह है कि शायद आज दुनिया घूम–फिर कर तबाही के उसी दहाने पर आकर खड़ी हो गई है जहाँ वह आज से साढ़े चौदह सौ साल क़ब्ल खड़ी थी।

अफ़सोस की बात है कि मुसलमान जिस तहज़ीब से मरऊब हैं, वह खुद अपना दम तोड़ चुकी है और उसकी हैसियत एक सड़े हुए लाशे की है। हक़ीक़त में मग़रिबी तहज़ीब वही मुतअफ़्फ़िन समाज है जिसकी मंज़रकशी सीरत की किताबों में बअसत–ए–नबवी (स0अ0व0) से क़ब्ल की गई है। इस तहज़ीब के पास न अपना कोई मुनज़्ज़म तरीक़ा–ए–ज़िंदगी है, न कोई दस्तूर, न कोई तामीरी ख़ाका, न कोई पैग़ाम। इस तहज़ीब का मक़सूद–ए–ज़िंदगी महज़ नाओ–नौश, ऐश–कोश है। इसकी पूरी तारीख़ में इंसानियत–सोज़ और रूह–फ़रसा जराइम की एक तवील दास्तान है। क़दीम ज़माने में गुलामों को नज़र–ए–आतिश करके उनकी रोशनी में डिनर करना तहज़ीबयाफ़्ता होने की अलामत समझा जाता था। एप्स्टीन फ़ाइलें खुलने के बाद अंदाज़ा होता है कि मौजूदा ज़माने में भी इन दरिंदों की दरिंदगी में कमी के बजाय इज़ाफ़ा ही हुआ है। अफ़सोस कि तहज़ीब–ए–मग़रिब ने साइंस व टेक्नोलॉजी में मशीनी हद तक तरक़्क़ी की और इंसानी जज़्बात व एहसासात को भी मशीन समझकर बड़ी बेरहमी के साथ कुचल डाला।

मौजूदा हालात में अगर मुसलमान अपने ईमान व अख़लाक़ के पूरे तवाज़ुन और अज़्म व नज़्म के साथ मैदान–ए–अमल में उतरें और ज़माने की नफ़्सियात को समझकर काम करें तो इंशाअल्लाह यक़ीनन हालात में बेहतरी पैदा होगी और वह दुनिया जो सच्ची ज़िंदगी और अम्न व इंसानियत की मुतलाशी है, उम्मीद है कि वह ज़रूर इस्लाम के वसीअ शमियाने में आकर फ़रोकश होगी।

रोज़े के मसाइल

सहरी व नियत

रोज़े चाहे रमज़ान का हो चाहे किसी और चीज़ का। बहरहाल उनके लिये सहरी खाना सुन्नत है। रोज़े की शुरूआत सुबह–ए–सादिक (प्रातः काल का समय) के उदय होने से होती है और ये सूरज डूबने पर ख़त्म होता है। इसलिये शरीअत ने यह सहूलत दे रखी है कि रोज़ेदार सुबह होने से पहले सहरी खा ले ताकि रोज़े में ताक़त बहाल रहे। अलग–अलग हदीसों में आप (स0अ0व0) ने इसका शौक़ दिलाया है। इसीलिये सहरी में सवाब होने पर उम्मत एकमत है। सहरी उतनी देर तक खायी जा सकती है कि सुबह होने की शंका न हो, रात के बचे होने का भी शक न हो। हज़रत ज़ैद बिन साबित (रज़ि0) से रिवायत है कि हम लोग जब रसूलुल्लाह (स0अ0व0) के साथ सहरी करते थे तो सहरी और फ़ज्र की अज़ान के बीच पचास आयत की तिलावत के बराबर का अन्तर होता था। आम तौर इतना कुरआन पांच–छः मिनट में पढ़ा जाता है।

अगर इस ख़्याल से सहरी खाई कि अभी सुबह नहीं हुई है हालांकि सुबह हो चुकी थी तो रोज़े की क़ज़ा वाजिब (अनिवार्य) होगी, कफ़्फ़ारा वाजिब (अनिवार्य) नहीं होगा, अगर शक हो कि शायद फ़ज्र का वक़्त हो गया तो बेहतर है कि खाना–पीना छोड़ दे फिर भी अगर खा ले और सुबह होने का यक़ीन न हो तो उसका रोज़ा हो जायेगा।

इसीलिये आप (स0अ0व0) का इरशाद है: "सहरी खाओ सहरी में बरकत है।" (बुख़ारी 1923)

एक दूसरी हदीस में आप (स0अ0व0) ने फ़रमाया: "हमारे और अहले किताब (यहूदी, इसाई इत्यादि) के रोज़ों में अन्तर और श्रेष्ठता सहरी खाने की है (हम खाते हैं और वो नहीं खाते हैं)।" (मुस्लिम 2550)

रही नियत तो इसके बग़ैर रोज़ा नहीं होगा। इसीलिये अगर एक व्यक्ति सुबह से शाम तक उन सभी चीज़ों से परहेज़ करे जिनसे रोज़ादार परहेज़ करता है लेकिन उसकी नियत रोज़ा रखने की न हो तो उसका रोज़ा नहीं होगा। इसीलिये आप (स0अ0व0) का इरशाद है: "जो फ़ज्र से पहले ही नियत न करे उसका रोज़ा नहीं होगा।" (तिरमिज़ी 730)

कई दूसरी हदीसों को देखते हुए फ़ुक़्हा (धार्मिक विद्वान) ने फ़रमाया कि ज़वाल (अर्थात सूर्य का सर के ठीक ऊपर होना) से एक घन्टा पहले नियत कर ले किन्तु शर्त यह है कि कुछ खाया–पिया न हो तो रमज़ान का और नफ़िली रोज़ा रखना दुरूस्त होगा और नियत का केन्द्र क्योंकि दिल होता है इसलिये सिर्फ़ दिल में ये इरादा कर लेना काफ़ी है कि कौन सा रोज़ा रख रहा हूं ज़बान से कहना ज़रूरी नहीं यद्यपि बेहतर यही है कि ज़बान से भी कह दे। (हिन्दिया 1/195)

जिन चीज़ों से रोज़ा नहीं टूटता

भूल कर खाने–पीने, सर में तेल लगाने और नहाने–धोने से रोज़ा नहीं टूटता है। अगर दिन में सो जाये और एहतलाम (वीर्य स्खलित होना) हो जाये तो रोज़ा नहीं टूटता है। इसी तरह दिन में इन्जेक्शन लगवाने से रोज़ा नहीं टूटता है लेकिन बेहतर यही है कि अगर बहुत सख़्त ज़रूरत न हो तो इफ़्तार के बाद इन्जेक्शन लगवाये। मिस्वाक चाहे ताज़ी या हरी हो या ख़ुश्क और सूखी हो उससे रोज़ा नहीं टूटता है यद्यपि मन्जन इत्यादि करना मकरूह है और अगर मन्जन हलक़ के नीचे उतर जाये तो रोज़ा टूट जायेगा। अगर ज़बान से कोई चीज़ चखकर थूक दे तो रोज़ा नहीं टूटता, यद्यपि अनावश्यक ऐसा करना मकरूह है।

रमज़ान के महीने में अगर किसी का रोज़ा किसी वजह से टूट जाए तब भी उस पर अनिवार्य है कि रामज़ान के सम्मान में रोज़ेदार की तरह खाने–पीने से परहेज़ करे।

क़ज़ा व कफ़्फ़ारा वाजिब होने की सूरतें

रोज़े को तोड़ने वाली चीज़ें दो तरह की हैं। कई वो हैं जिनसे क़ज़ा और कफ़्फ़ारा दोनों लाज़िम होते हैं, और वो चीज़ें ये हैं:

1– पति–पत्नी का संबंध स्थापित करना, चाहे स्खलित (वीर्य निकलना) हो या न हो दोनों हालतों में रोज़ा टूट जायेगा और कफ़्फ़ारा ज़रूरी होगा। अगर ये काम औरत की रज़ामन्दी से हुआ तो उस पर भी कफ़्फ़ारा लाज़िम होगा और अगर उसकी रज़ामन्दी नहीं थी, पति ने ये काम ज़बरदस्ती से किया तो औरत पर केवल क़ज़ा ज़रूरी होगी, अगर शुरूआत में इसे मजबूर किय गया हो और बाद में उसकी रज़ामन्दी हो गयी हो तब भी उस पर केवल कज़ा ज़रूरी होगी।

2– जानबूझ कर ऐसी चीज़ खाना जिसको खाने के तौर पर और दवा इस्तेमाल किया जाता है, जैसे रोटी, चावल, शरबत वग़ैरह या किसी दवा का इस्तेमाल करना।

इसके उल्टे अगर भूले से यह कर दे तो रोज़ा नहीं टूटेगा और कोई ऐसी चीज़ खाये जिसे खाने या दवा के तौर पर नहीं खाया जाता तो रोज़ा टूट जाएगा लेकिन सिर्फ़ क़ज़ा लाज़िम होगी कफ़्फ़ारा लाज़िम नहीं होगा, जैसे कोई कंकड़ी या लोहे का टुकड़ा खा ले।

इन चीज़ों से कफ़्फ़ारा वाजिब होने का ज़िक्र इशारे के साथ या खुले तौर पर हज़रत अबूहुरैरा (रज़ि0) की इस हदीस में आया है। कहते हैं कि हम सब आप (स0अ0व0) के पास बैठे हुए थे कि एक बद्दू ख़िदमत में हाज़िर हुआ और कहने लगा कि ऐ अल्लाह के रसूल! मैं तबाह हो गया। आप (स0अ0व0) ने पूछा, क्या हुआ? उसने कहा कि मैंने रोज़े की हालत में पत्नी से संबंध स्थापित कर लिया, आप (स0अ0व0) ने पूछा, क्या आज़ाद करने के लिये तुम्हारे पास गुलाम है? उसने कहा, नहीं; आप (स0अ0व0) ने फ़रमाया, तो क्या दो महीने लगातार रोज़ा रखते हो?उसने कहा, नहीं; आप (स0अ0व0) ने फ़रमाया इतना माल है कि साठ ग़रीबों को खिला सकते हो? उसने कहा, नहीं। (बुख़ारी)

इससे पता चला कि संबंध स्थापित कर लेने से क़ज़ा व कफ़्फ़ारा दोनों ज़रूरी होंगे और इस बात की ओर इशारा भी मिला कि चूंकि खाना–पीना भी इसी दर्जे (श्रेणी) में है अतः इसका भी यही आदेश होगा। साथ ही कफ़्फ़ारे का तरीक़ा भी मालूम हुआ कि पहले नम्बर पर गुलाम आज़ाद करना है, न कर सके जैसा कि वर्तमान समय में गुलामी का दौर ख़त्म हो जाने के कारण किसी के लिये भी ये शक्ल सम्भव नहीं, तो दो महीने लगातार रोज़े रखे, अगर इन दो महीनों के बीच रमज़ान आ गया तो या अय्याम तश्रीक (माहवारी) आ गये तो क्रम टूट जायेगा और शुरूआत से रोज़े रखने पड़ेंगे। यही हुक्म उस वक़्त भी होगा जब बीमार हो जाये या औरत निफ़ास (प्रस्व रक्त) की हालत में हो जाये, क्रम उससे भी टूट जायेगा। यद्यपि अगर बीच में औरत को हैज़ (माहवारी) आ जाये तो वो रोज़े रखना बन्द कर दे, फिर जब हैज़ रुक जाये तो जितने रोज़े बाक़ी रह गये थे सिर्फ़ वही रख ले फिर से रखने की ज़रूरत नहीं है।

और अगर किसी में रोज़ा रखने की भी ताक़त नहीं तो साठ मिस्कीनों को दो वक़्त भरपेट खाना खिलाये, या हर मिस्कीन को सदक़ा–ए–फ़ित्र के बराबर ग़ल्ला दे यानि आधा साअ (1.633 किलोग्राम) गेहूं या एक किलो जौ या खजूर या उन चीज़ों की क़ीमत के बराबर कोई दूसरी चीज़ या नक़द रुपये दे दे, अगर इस तरह करने के बजाय किसी एक मिस्कीन को साठ दिन तक दो वक़्त का खाना खिला दे तब भी कफ़्फ़ारा अदा हो जाएगा।

क़ज़ा वाजिब होने की सूरतें

वह है जिससे सिर्फ़ क़ज़ा लाज़िम होती है, कफ़्फ़ारा लाज़िम नहीं होता, यह चीज़ें मुन्दरजा ज़ेल हैं:

1– अगर किसी को खाने पर जान व माल की धमकी देकर मजबूर किया गया, और उसने ख़ौफ़ (भय) से खा लिया तो रोज़ा टूट जायेगा लेकिन सिर्फ़ क़ज़ा ज़रूरी होगी। यही हुक्म उस समय होगा जब ग़लती से कुछ खा–पी ले, यानि रोज़ा याद था, खाने–पीने का इरादा नहीं था लेकिन खाने–पीने की चीज़ हलक़ से उतर गयी, तो ऐसी सूरत में रोज़ा टूट जायेगा और सिर्फ़ क़ज़ा वाजिब होगी।

2– अगर कोई ऐसी चीज़ खाई या पी जिसको बतौर दवा या ग़िज़ा नहीं खाया–पिया जाता है जैसे कन्करी वग़ैरह।

3– दांतों में कोई चीज़ अटकी हुई थी, अगर वो चने के बराबर या उससे बड़ी थी तो उसके निगलने से रोज़ा टूट जायेगा और क़ज़ा होगी और अगर चने से छोटी थी तो रोज़ा नहीं टूटेगा लेकिन ये उस वक़्त होगा जब मुंह से न निकाला हो अगर निकाल कर खाये तो चीज़ छोटी हो या बड़ी रोज़ा टूट जायेगा।

4– अगर हक़्ना (पचना) लगाया या नाक के अन्दरूनी हिस्से में दवा डाली या कान में तेल या कोई दवा डाली या औरत ने अपनी शर्मगाह में दवा डाली तो रोज़ा टूट जायेगा और केवल क़ज़ा ज़रूरी होगी लेकिन अगर आंख में दवा डाली या सुरमा लगाया तो रोज़ा नहीं टूटेगा, इसी तरह अगर कान में पानी डाला तब भी रोज़ा नहीं टूटेगा।

5– अगर अगरबत्ती या लोबान सुलगाई फिर उसको सूंघा और धुआं अन्दर चला गया तो रोज़ा टूट जायेगा। इसी तरह सिगरेट, बीड़ी इत्यादि से रोज़ा टूट जायेगा।

6– क़ै (उल्टी) के बारे में लोगों में आम तौर से ये ग़लत फ़हमी पायी जाती है कि चाहे जिस तरह की भी क़ै हो रोज़ा टूट जायेगा, इसलिये क़ै के सिलसिले में आप (स0अ0व0) ने इरशाद फ़रमायाः

जिसको रोज़े की हालत में ख़ुद से क़ै हो जाये उस पर क़ज़ा नहीं है और जो जानबूझ कर क़ै करे उस क़ज़ा ज़रूरी है। (तिरमिज़ी)

इस हदीस के आधार पर फ़ुक़्हा (धार्मिक विद्वानों) ने फ़रमायाः क़ै कि कई सूरतें हो सकती हैं लेकिन रोज़ा केवल दो सूरतों में टूटता है, एक ये कि मुंह भर के हो और रोज़ेदार इसको निगल ले, चाहे पूरी क़ै या चने के बराबर

या उससे ज़्यादा को निगले। दूसरे ये कि जानबूझ कर क़ै करे और मुंह भर के क़ै हो, बक़िया किसी और तरह की क़ै से रोज़ा नहीं टूटता है।

पान, तम्बाकू और सिगरेट–बीड़ी का हुक्म

इसी हुक्म में पान तम्बाकू और सिगरेट इत्यादि भी हैं। पान तम्बाकू की पीक अगर कोई निगल लेता है तो बिल्कुल साफ़ बात है कि उसने एक चीज़ हलक़ से नीचे उतार ली। अतः इससे रोज़े के चले जाने में कोई शक की बात ही नहीं है लेकिन कुछ लोग पीक निगलते नहीं है सिर्फ़ पान व तम्बाकू चबाकर उसे थूक देते हैं। इसलिये कुछ लोगों को शक होता है कि उससे शायद रोज़ा नहीं टूटता क्योंकि फ़ुक़्हा किराम ने फ़रमाया है कि किसी चीज़ के चबाने से रोज़ा नहीं टूटता और इस शक्ल में सिर्फ़ चीज़ को चबाया गया खाया नहीं गया लेकिन ये शक ठीक नहीं है इसलिये कि खाने–पीने को रोज़ा तोड़ने वाला बताया गया है और उन चीज़ों के चबाने को भी खाना कहते हैं फिर कुछ पान या उसका पीक तो बहरहाल हलक़ के नीचे उतर जाता है साथ ही इसके आदी लोगों को इसमें ख़ास लज़्ज़त (विशेष मज़ा) मिलती है अतः न केवल यह कि उनसे रोज़ा टूट जायेगा। बल्कि अगर उन चीज़ों को जानबूझ कर इस्तेमाल किया गया तो कफ़्फ़ारा भी लाज़िम होगा।

इसी हुक्म में गुल से दांत मांजना भी है। इसलिये कि इसमें भी ख़ास लज़्ज़त मिलती है और कुछ हिस्सा के अन्दर जाने का बहुत हद तक संभावना रहती है।

जहां तक बीड़ी–सिगरेट इत्यादि का संबंध है तो उसमें जानबूझ कर धुआं अन्दर लिया जाता है और जानबूझ कर धुआं अन्दर लेने से रोज़ा टूट जाता है। अतः इन सारी चीज़ों से परहेज़ ज़रूरी है।

मन्जन और टूथपेस्ट का हुक्म

आप (स0अ0व0) ने मिस्वाक की बड़ी ताकीद फ़रमायी (ज़ोर दिया) है। इस एतबार से फ़ुक़्हा ने रमज़ान में भी मिस्वाक करने की इजाज़त दी है चाहे मिस्वाक की लकड़ी सूखी हो या गीली लेकिन अगर मिस्वाक की तरी उसकी हलक़ के नीचे उतर जाये तो रोज़ा टूट जाता है लिहाज़ा रोज़े की हालत में मिस्वाक करते हुए इसका ख़्याल रखना चाहिये कि मिस्वाक की तरी या लकड़ी का कोई हिस्सा हलक़ से नीचे न उतरने पाये।

जहां तक मन्जन व टूथपेस्ट इत्यादि का संबंध है तो उनका हुक्म मिस्वाक के हुक्म से अलग है इसलिये कि इनमें ज़ायक़ा बहुत बढ़ा हुआ होता है। अतः जिस तरह फ़ुक़्हा (धर्मज्ञाताओं) ने फ़रमाया कि किसी ज़रूरत के बग़ैर किसी चीज़ का चबाना मकरूह है। उसी तरह इन सब चीज़ों का भी हुक्म होगा। यद्यपि किसी ख़ास ग़रज़ से अगर उन चीज़ों से दांत साफ़ करे तो इन्शाअल्लाह कराहत नहीं होगी।

आक्सीजन का हुक्म

दमे के मरीज़ को दौरा पड़ने के वक़्त आक्सीजन दी जाती है। रोज़े की हालत में इस तरह आक्सीजन लेने का क्या हुक्म होगा? फ़िक़्ही जुज़ को सामने रखा जाये तो ख़्याल होता है कि अगर होता है कि अगर आक्सीजन के साथ कोई दवा न हो तो रोज़ा नहीं टूटना चाहिये क्योंकि ये सांस लेना है और सांस लेने के ज़रिये हवा लेने से रोज़ा नहीं टूटता है और न उसे खाने–पीने में गिना जाता है। अगर इसके साथ दवा के कण भी हों तो फिर उससे रोज़ा टूट जायेगा। (जदीद फ़िक़्ही मसले : 188/1)

जहां तक दमे के मरीज़ के लिये इन्हेलर के प्रयोग का संबंध है तो चूंकि इसमें दवा मिली हुई होती है लिहाज़ा इससे रोज़ा टूट जायेगा।

इन्जेक्शन और ड्रिप लगवाना

उलमा की सहमति इसी पर है कि इन्जेक्शन चाहे किसी भी प्रकार का हो उससे रोज़ा नहीं टूटेगा चाहे रग में लगाया जाये या गोश्त में। यही हुक्म ड्रिप लगवाने का भी है, लेकिन बग़ैर किसी ग़रज़ के बेहतर यही है कि दिन में न लगवाये, ज़रूरत हो तो दिन में भी लगवा सकता है, लेकिन सिर्फ़ इस मक़सद से ड्रिप लगवाना कि बदन में ताक़त आ जाये और प्यास में कमी हो जाये मकरूह है।

ज़बान के नीचे दवा रखना

फ़ुक़्हा ने अनावश्यक किसी चीज़ को मुंह में रखने और चखने को मकरूह घोषित दिया है, यद्यपि यह स्पष्ट किया गया है कि अगर किसी कारण से ऐसा करे तो कराहत नहीं होगी। कारण की मिसाल में फ़ुक़्हा ने लिखा है कि शौहर अगर बदअख़लाक (दुर्व्यवहरी) और सख़्त मिज़ाज वाला हो तो उसकी बीवी के लिये नमक इत्यादि का पता लगाने के लिये चखना जायज़ होगा। लेकिन साथ ही ये साफ़ है कि अगर कोई ऐसी चीज़ मुंह में रखी या चबाई जिसका हलक़ के नीचे उतर जाना विश्वस्नीय है तो रोज़ा टूट जायेगा। इसकी मिसाल में फ़ुक़्हा ने कुछ गोंदो का नाम लिया है। शायद इसी वजह से हमारे उलमा ने पान तम्बाकू इत्यादि के मुंह में रखने को रोज़ा तोड़ने वाला बताया है। इसलिये कि इसका असर साफ़ तौर पर हलक़ के नीचे पहुंच जाते हैं और तम्बाकू की तलब पूरी हो जाती है।

इस व्याख्या के बाद हम आसानी से फ़ैसला कर सकते हैं कि "इन्जाइना" (दिल का रोग) के मरीज़ों के लिये इस ज़रूरत से कहीं बढ़कर है जिसके तहत बीवी को नमक चखने की छूट दी गयी है और सवाल केवल ये रह जाता है कि ये दवा हलक़ के नीचे तो नहीं उतरती? अगर एहतियात के बावजूद दवा के ज़र्रात ख़ास गोंद की तरह हलक़ के नीचे उतर जाते हों तो उसके मुंह में रखने से रोज़ा टूट जायेगा और ज़बान के नीचे रखने के बाद तबियत बेहतर हो जाने से लगता है ज़ाहिरी तौर पर यही बात है। लेकिन विशेषज्ञों की राय है कि ऐसा नहीं है, इसको देखते हुए कहा जा सकता है कि जहां तक हो सके रोज़ेदार इस गोली का इस्तेमाल न करे लेकिन इसके इस्तेमाल से रोज़ा उसी वक़्त टूटेगा जब दवा मिला हुआ लुआब (एक प्रकार का थूक) हलक़ के नीचे उतर जाये। सिर्फ़ जबान के नीचे गोली रखना रोज़ा टूटने की वजह नहीं होगी।

इन्हेलर का इस्तमाल

जिन लोगों को दमे की शिकायत होती है उनको इन्हेलर के ज़रिये दवा का इस्तेमाल करना पड़ता है। इसके ज़रिये पाउडर का बहुत छोटा कण फेफड़ों तक पहुंचाया जाता है। इलाज के इस तरीक़े के ज़रिये दवा के इस्तेमाल से रोज़ा टूट जायेगा। इसलिये फ़िक़ के नज़रिये से साफ़ ज़ाहिर हो रहा है कि मनाफ़िज़–ए–अस्लिया (मुंह, दिमाग, नाक, कान, अगली–पिछली शर्मगाहें) से जब किसी चीज़ को दाख़िल किया जा रहा हो तो केवल दाख़िले से रोज़ा टूट जाता है और इन्हेलर के इस्तेमाल में बहरहाल दख़ल होता है चाहे दवा कम ही क्यों न हो।

भाप की शक्ल में दवा का इस्तेमाल

निमोनिय और कई दूसरी बीमारियों में भाप के ज़रिये भी दवा इस्तेमाल की जाती है। ये इस्तेमाल कभी दवा को पानी में डालकर और पानी को खौलाकर उसकी भाप मुंह और नाक से लेकर किया जाता है और कभी ये काम कुछ यन्त्रों के द्वारा किया जाता है। बहरहाल भाप चाहे किसी भी यन्त्र की मदद से ली जाये या सादा तरीक़े से, दोनों हालतों में रोज़ा टूट जायेगा, इसके लिये फ़ुक़्हा ने साफ़ किया है कि जानबूझ कर धुआं हलक़ के नीचे उतारने से रोज़ा टूट जाता है और ये बात इसमें पूरी तरह से पायी जाती है।

बवासीरी मस्सों पर मरहम लगाने का आदेश

अगर पीछे के रास्ते से किसी दवा का प्रयोग किया जाए और दवा हुक़्ना (पिछली शर्मगाह का भीतरी भाग) लगाने के स्थान तक पहुंच जाए तो रोज़ा टूट जाता है। इसलिए फुकहा ने इसको भी हुक़्ना लगाने के स्थान में सम्मिलित किया हैं जबकि फुकहा ने स्पष्ट किया है कि यदि दवा हुक़्ना लगाने के स्थान तक न पहुंचे तो रोज़ा नहीं टूटेगा।

इस व्याख्या से स्पष्ट हो गया है कि कोई दवा या मरहम लगाने से या इसको पानी से तर करके चढ़ाने से रोज़ा नहीं टूटेगा इसलिए कि जानकारों का कहना है कि बवासीरी मस्से हुक़्ना लगाने के स्थान से बहुत नीचे होते हैं।

रोग की पुष्टि के लिए यन्त्रों का प्रयोग

अगर रोग की खोज के लिए पीछे के गुप्तांग में किसी यन्त्र की सहायता ली जाए तो अगर यह यन्त्र सूखे हैं और इनका एक सिरा बाहर है जैसा कि आमतौर पर होता है तो इन यन्त्रों को अन्दर डालने से रोज़ा नहीं टूटेगा लेकिन अगर यन्त्र पर कोई तेल या ग्रीस जैसी चीज़ लगाकर इसे अन्दर किया गया है तो रोज़ा टूट जाएगा।

यही हुक्म औरत की अगली शर्मगाह तहक़ीक़ (खोज) के लिये किसी यन्त्र के डालने का भी है।

गर्भ तक यन्त्र का पहुंचाना

गर्भ की सफ़ाई के लिये और फ़मे रहम को बढ़ाने के लिये जो यन्त्र (क्पसंजवते) प्रयोग किये जाते हैं और गर्भ का अन्दरूनी हिस्सा खुरचने का यन्त्र (ब्नतमजजम) यदि उन पर कोई तेल इत्यादि लगाकर उनको प्रविष्ठ कराया जाये तो रोज़ा टूट जाएगा और अगर सूखा डाला जाए तो रोज़ा नहीं टूटेगा।

लेकिन यदि सूखा डालकर और एक बार बाहर निकालकर दोबारा साफ़ किये बिना उनको फिर डाला जाए तो रोज़ा टूट जाएगा चाहे दोबारा सूखा हो गीला।

औरत की शर्मगाह में दवा कर ररवना

यदि आन्तिरक भाग में कोई दवा रखी जाए या रखी ऊपरी हिस्से में जाए वह अन्दरूनी हिस्से तक पहुंच जाए तो रोज़ा टूट जाएगा, चाहे दवा गीली हो या सूखी।

पेशाब के स्थान तक नली का पहुंचना

यदि मर्द के मुसाना तक नली पहुंचाई जाये तो इससे रोज़ा नहीं टूटेगा चाहे नली सूखी हो या गीली इससे दवा पहुंचाई जाए या नहीं और औरत के मुसाना में नली पहुंचाई जाए तो यदि नली गीली है तो या इससे दवा पहुंचाई गई है तो रोज़ा टूट जाएगा लेकिन अगर नली सूखी हो और इससे दवा भी न पहुंचाई गई हो तो रोज़ा नहीं टूटेगा।

ज़कात

फ़ज़ाइल-ओ-मसाइल

ज़कात इस्लाम का एक महत्वपूर्ण अंग है। कुरआन पाक में जगह–जगह नमाज़ के साथ ज़कात देने पर भी ज़ोर दिया गया है। "आप (स0अ0व0) ने इसे इस्लाम के पांच बुनियादी हिस्सों (मूलभूत कर्तव्य) में से एक बताया है।" (बुख़ारीः 1399)

साहबे निसाब (जिस पर ज़कात देना अनिवार्य हो) होने के बावजूद ज़कात न अदा करने वालों को कुरआन पाक में जो कठोर दण्ड सुनाया गया है उससे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। अल्लाह तआला का इरशाद हैः

"जो लोग अपने पास सोना–चांदी एकत्र करते हैं और उसको अल्लाह के रास्ते में ख़र्च नहीं करते तो (ऐ नबी (स0अ0व0) आप उनको दर्दनाक अज़ाब (दण्ड) की ख़ुशख़बरी सुना दीजिये। यह दर्दनाक अज़ाब उस दिन होगा जिस दिन उस सोने और चांदी को जहन्नम (नर्क) की आग में तपाया जायेगा, फिर उसके द्वारा उनके माथे, उनके पहलू और उनकी पीठ को दाग़ा जायेगा (और उनसे कहा जायेगा) ये है वो ख़ज़ाना जो तुमने अपने लिये एकत्र किया था, तो आज तुम उस ख़ज़ाने का मज़ा चखो जो तुम अपने लिये एकत्र कर रहे थे।" (सूरह तौबाः 34–35)

अतः हर साहबे निसाब मुसलमान के लिये ज़रूरी है कि वो पूरा–पूरा हिसाब करके ज़कात अदा करे। बहुत से लोग बिना हिसाब के ही कुछ रक़म या दूसरी चीज़ें ग़रीबों को देकर अपने को ज़िम्मेदारी से बरी समझते हैं। ये तरीक़ा सही नहीं है। पूरा हिसाब लगाकर ज़कात देना ज़रूरी है।

सदक़ा देने से माल बढ़ता है

ज़कात न अदा करने का एक बड़ा बल्कि मूल कारण यह माना जाता है कि इससे माल की एक बड़ी मात्रा हाथ से निकल जायेगी और उसके बदले में कोई चीज़ नहीं मिलेगी। लेकिन कुरआन मजीद में इस ख़्याल की काट की गयी है और इस पर पूरी तरह से संतुष्ट किया गया है कि अल्लाह के रास्ते में ख़र्च करने से माल घटता नहीं है, बल्कि इसमें बढ़ोत्तरी होती है।

अल्लाह तआला का इरशाद हैः

"अल्लाह तआला सूद को घटाता है और सदक़ात (दान) को बढ़ाता है।" (बक़राः 276)

ज़कात वाजिब (अनिवार्य) होने की शर्तें

ये भी ध्यान रहे कि ज़कात न हर व्यक्ति पर अनिवार्य होती है न हर माल पर बल्कि इसके अनिवार्य होने के लिये उस व्यक्ति का अक़्ल वाला होना और बालिग़ होना, साहबे निसाब होना, माल पर साल का बीतना, उस माल का कर्ज़ से ख़ाली होना, इसी तरह उसका हाजते अस्लिया (आवश्यक आवश्यकताओं) से ख़ाली होना शर्त है। एक भी शर्त न पायी जाये तो ज़कात अनिवार्य नहीं होगी।

ज़कात के माल

जिन चीज़ों पर ज़कात वाजिब (अनिवार्य) है वे मूल रूप से चार हैं।

1. जानवर
2. सेना
3. चांदी (नक़दी भी सोना और चांदी के हुक्म में आती है)
4. व्यापारिक माल

सोने–चांदी का निसाब (मात्रा)

चांदी की मात्रा दो सौ दिरहम जबकि सोने की मात्रा बीस मिसक़ाल है। हिन्दुस्तान के उलमा की खोज चांदी के दो सौ दिरहम यानि साढ़े बावन तोला (612.360 ग्राम) और सोने के बीस मिसक़ाल यानि साढ़े सात तोला (87.480 ग्राम) के बराबर होते हैं। जहां तक नक़द और व्यापारिक माल का संबंध है तो उनकी मिल्कियत का अनुमान भी चांदी के की मात्रा से किया जायेगा यानि अगर किसी के पास चांदी की मात्रा के बराबर नक़द रक़म या व्यापारिक माल है तो वो शरीअत के अनुसार साहबे निसाब (जिस पर ज़कात अनिवार्य हो) है।

फिर ये भी ध्यान रहे कि सोना–चांदी चाहे इस्तेमाल हो रहे ज़ेवर की शक्ल में हो या न इस्तेमाल हो रहे ज़ेवर की शक्ल में हो, चाहे सिक्कों या जुरूफ़ वग़ैरह की शक्ल में हो, अगर वह निसाब (मात्रा) के बराबर है और उस पर साल गुज़र जाता है तो उसकी ज़कात बहरहाल वाजिब (अनिवार्य) हो जायेगी। यही आदेश नक़द रक़म का भी है। लेकिन बक़िया दूसरे माल यानि उरूज़ में ये भी शर्त है कि वो व्यापार की नियत से हों वरना उन पर ज़कात वाजिब नहीं होगी।

हौलान–ए–हौल का मतलब

ज़कात के फर्ज होने की एक शर्त यह भी बताई गई

कि इस पर साल गुज़र जाए, वरना ज़कात फ़र्ज़ नहीं होती, लेकिन इसमें एक ज़रूरी बात यह पेश–ए–नज़र रहनी चाहिए कि अगर किसी के पास निसाब के बराबर (मात्रानुसार) ज़कात का माल है तो अगर साल के बीच में उस माल में बढ़ोत्तरी होती है तो उस बढ़े हुए माल का हिसाब पहले से मौजूद माल की तारीख़ से किया जायेगा। जब बक़िया माल पर साल गुज़र जाये तो उसकी ज़कात के साथ उस ज़ायद माल की भी ज़कात निकालना ज़रूरी होगा ये नहीं कि हर बढ़ोत्तरी के लिये अलग से साल का हिसाब किया जाये और यह कि साल गुज़रने में अंग्रेज़ी महीनों के बजाये चाँद के महीनों का हिसाब किया जायेगा।

किस दिन की मालियत का एतबार होगा

व्यापारिक माल के बारे में आ चुका है कि उन पर ज़कात अनिवार्य है। जैसे अगर किसी की दुकान या कोई कारोबार है तो साल गुज़रने के बाद उसके पास जो कुछ नक़द रक़म या सामान है उसकी ज़कात उस पर फ़र्ज़ है और सामान का मूल्य निकालते समय उनके उसी दिन के मूल्य का एतबार होगा जिस दिन वो उनकी ज़कात अदा कर रहा है।

हाजत–ए–अस्लिया (ज़रुरी ज़रुरतें) का मतलब

जो चीज़ अस्ल ज़रूरतों के लिये हो उसमें ज़कात फ़र्ज़ नहीं होती। अस्ल ज़रूरत की मिसाल में फ़ुक़्हा (धार्मिक विद्वान) ने रहने के मकान, पहनने के कपड़े, सवारी के जानवर और गाड़ी, खेती या फ़ैक्ट्री के यन्त्र और घर के फ़र्नीचर इत्यादि चाहे वे चीज़ें कई हों और उनको किराये पर उठाता हो तब भी उन पर ज़कात वाजिब नहीं होती है।

ज़कात की मात्रा

ज़कात की वाजिब मात्रा किसी भी माल में उसका चालीसवा हिस्सा या ढ़ाई प्रतिशत तय की गयी है।

शेयर पर ज़कात

ज़कात हर प्रकार के व्यापारिक माल पर अनिवार्य है चाहे वो जानवरों का व्यापार हो या गाड़ियों का व्यापार हो या ज़मीन का और क्योंकि शेयर भी व्यापारिक माल के अन्तर्गत आते हैं अतः उन पर भी ज़कात फ़र्ज़ है। अगर किसी ने शेयर इस उद्देश्य से ख़रीदे हैं कि उन पर वार्षिक लाभ लेगा, उनको बेचेगा नहीं, तो उसको अपनी कम्पनी से ख़बर करनी चाहिये कि उसका कितना सामान अचल है जैसे बिल्डिंग और मशीनरी इत्यादि की शक्ल और कितना माल चल है जैसे नक़द, कच्चा माल तैयार माल इत्यादि। जितनी सम्पत्ति अचल है उन पर ज़कात नहीं होगी और जितनी सम्पत्ति चल है उन पर ज़कात अनिवार्य होगी। अगर कम्पनी के माल का विवरण न मिल सके तो इस हालत में एहतियात के तौर पर पूरी ज़कात अदा कर दी जाये और अगर शेयर इस उद्देश्य से ख़रीदे हैं कि जब बाज़ार में उनकी क़ीमत बढ़ जायेगी तो उनको बेच करके लाभ कमायेगें तो पूरे शेयर की पूरी बाज़ारी क़ीमत पर ज़कात अनिवार्य होगी। जैसे आपने पचास रूपये के हिसाब से शेयर ख़रीदे और मक़सद ये था कि जब उनकी कीमत बढ़ जायेगी तो उनको बेचकर मुनाफ़ा कमाएंगे। उसके बाद जिस दिन आपने ज़कात का हिसाब निकाला उस दिन शेयर की क़ीमत साठ रूपये हो गयी तो अब साठ रूपये के हिसाब से उन शेयर की मालियत निकाली जायेगी और उस पर ढ़ाई प्रतिशत के हिसाब से ज़कात अदा करनी होगी।

प्राविडेन्ड फ़न्ड पर ज़कात

ज़कात फ़र्ज़ होने की एक अहम शक्ल ये भी है कि उस पर इनसान का सम्पूर्ण नियन्त्रण भी हो। इसी कारण से फ़ुक़्हा (धर्मज्ञाताओं) ने कहा है कि अगर किसी को कर्ज़ दिया और बाद में क़र्ज़ लेने वाला उससे इनकार कर रहा है बज़ाहिर उसका मिलना मुश्किल है या किसी जगह डालकर भूल गया या किसी दरिया इत्यादि में गिर गया तो उन रूपयों की ज़कात वाजिब नहीं होगी। फिर जब अप्रत्याशित रूप से यह माल मिल जाये तो गुज़रे हुए सालों की ज़कात उस पर वाजिब नहीं होगी। ये रक़म जिस वक़्त मिली है उस वक़्त से उसका हिसाब लगाया जायेगा। (हिन्दिया 1/187)

जहां तक प्राविडेन्ड फ़न्ड का संबंध है तो इसमें एक हिस्सा वो होता है जो शासन उसमें मिलाकर देता है। जहां तक इस दूसरी बढ़ी हुई राशि का संबंध है तो चाहे उसे ईनाम कहा जाये या सेवा का मेहनताना जिसका अभी मालिक नहीं हुआ है। अतः उस पर गुज़रे हुए दिनों की ज़कात वाजिब होने का कोई करण नहीं है। चर्चा योग्य फ़न्ड का वो हिस्सा है जो सेवा के दौरान वेतन से कटकर जमा होता है इसका मामला ये है कि कर्मचारी इसका अधिकारी है लेकिन उस पर अधिकार प्राप्त नहीं हुआ है अतः इस रक़म पर भी गुज़रे हुए दिनों की ज़कात वाजिब नहीं होगी। उलमा–ए–मुहक़्क़िीन का रूझान इसी तरफ़ है।

क़र्ज़ अदा करना

अगर कोई व्यक्ति पर्याप्त मात्रा का मालिक है

लेनिक वो साथ ही कर्ज़दार भी है तो कर्ज़ के बराबर माल पर ज़कात अनिवार्य नहीं होगी। अगर कर्ज़ के बराबर अदा करने के बाद भी निसाब के बराबर माल बच रहा है तो उस पर उसी के बराबर ज़कात अनिवार्य हो जायेगी।

सोने और चांदी को मिलाना

किसी के पास साढ़े सात तोला (612.480 ग्राम) सोना न हो लेकिन उसके पास कुछ सोना और कुछ चांदी मौजूद हो तो क्या उसके ऊपर ज़कात वाजिब हो जायेगी। इस मसले में दो राय हैंः

1– इमाम शाफ़ई और कई दूसरे लोगों के निकट उस पर ज़कात वाजिब नहीं होगी। इमाम शाफ़ई ने अपनी किताब अलउम में इस पर बहस की है कि उसके पास न सोने की पर्याप्त मात्र है न चांदी की तो उस पर ज़कात कैसे वाजिब हो सकती है जबकि दोनो अलग–अलग जिंस (धातु) हैं।

2– दूसरी राय हनफ़ी मसलक और कई दूसरे लोगों की है कि अगर दोनों के मिलाने से पर्याप्त मात्रा हो जाये तो ज़कात अनिवार्य हो जायेगी। इस पर बहस बुकैर इब्ने अब्दुल्लाह रज़ि0 की रिवायत से कि ज़कात निकालने में सहाबा का तरीक़ा चांदी और सोने के मिलाने का था। फिर दोनों क़ीमत के एतबार से एक ही जिंस (धातु) हैं।

बहरहाल अक़्ली दलील दोनों तरफ़ से मज़बूत हैं लेकिन मनकूली दलील में इस एतबार से प्रथम पक्षधर का पक्ष कुछ मज़बूत घोषित किया जाता है कि हज़रत बुकैर की रिवायत हदीस की किताब में नहीं मिलती। फिर इमाम अबू हनीफ़ा और साहिबैन की बीच ये मतभेद है कि सोने और चांदी को मिलाने की कैफ़ियत क्या होगी।

इमाम अबू हनीफ़ा के निकट दोनों को मूल्य के अनुसार मिलाया जायेगा। यानि अगर किसी के पास दो तोला सोना और दो तोला चांदी है तो ये देखा जायेगा कि दो तोला सोना अगर बेच दिया जाये तो क्या साढ़े बावन तोला या उससे ज़्यादा चांदी हासिल हो जायेगी। अगर इतनी ज़्यादा चांदी हासिल हो सकती है तो वो साहिबे निसाब माना जायेगा। फ़तवा इमाम साहब के कथन ही पर है जबकि साहिबैन (अर्थात इमाम अबू हनीफ़ा के दो शिष्य इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद) के नज़दीक दोनों को जुज़ (हिस्से) के एतबार से मिलाया जायेगा यानि वज़न के एतबार से अगर आधा निसाब सोने का और आधा चांदी या दो तिहाई साने का और एक तिहाई चांदी का या एक चौथाई सोने का और तीन चौथाई चांदी का पाया जा रहा हो तो ज़कात वाजिब हो जायेगी वरना नहीं।

इमाम साहब के कथन के अनुसार अगर सोने–चांदी की मामूली मात्रा भी किसी के पास हो तो वो साहिबे निसाब बन जायेगा और उसके लिये ज़कात लेना जायज़ नहीं रहेगा। इतनी मामूली मिक़दार बिल्कुल मामूली लोगों के पास भी आम तौर से रहती है। इस परिस्थिति में ये सवाल उठाया जाता है कि क्या मौजूदा हालात में साहिबैन के कथन को अपनाया जा सकता है। इसलिये कि साहिबैन के कथन पर चला जाये तो इसमे ज़कात देने वाले और लेने वाले दोनों का ख़्याल हो जायेगा और संतुलन बना रहेगा।

लेखक के ख़्याल से ऐसा करने की गुंजाइश है। इसलिये कि इस मसले का संबंध हालात के बदलने से है और इस बात पर सहमति है कि हालात बदल जाये तो आदेश बदल जाता है। फिर ये तो इफ़्ता के हुक्म में भी लिखा हुआ है कि मतभेद अगर साहिबैन और इमाम साहिब के बीच में तो मुफ़्ती उनमें से किसी पर भी फ़तवा दे सकता है। लिहाज़ा सामूहिक शोध के इस दौर में उलमा सहमत हो जायें तो इसकी गुंजाहश होगी। फिर इमाम साहब की एक रिवायत साहिबैन के कथन के मुताबिक़ भी है लिहाज़ा इमाम साहब के इस क़ौल को इस्तहबाब पर महमूल करके ततबीक़ की जा सकती है। मुफ़्ती किफ़ायत उल्ला साहब ने किफ़ायतुल मुफ़्ती में इसी तरह ततबीक़ दी है।

बात का अर्थ यह है कि व्यापारिक माल वाले मसले में मुफ़्ता बिही हुक्म से हटने की इजाज़त नहीं दी जा सकती जबकि दूसरे मसले में अगर उलमा इत्तिफ़ाक़ कर लें तो इसकी गुंजाइश है।

ज़कात के हक़दार

ज़कात की हैसियत चूंकि केवल सामान्य ख़र्च और इनसानी मदद की नहीं है बल्कि ये एक महत्वपूर्ण इस्लामी इबादत और शरई कार्य है इसलिये शरीअत ने इसके ख़र्च निश्चित कर दिये हैं, अल्लाह तआला का इरशाद हैः

"ज़कात फ़क़ीरों, ग़रीबों, आमलीन (ज़कात के एकत्रीकरण व बंटवारे के कार्यकर्ता) मुअल्लफ़तुल कुलूब, (इस्लाम कुलूब करने वालों के दिलजोई हेतु ख़र्च) गुलाम, क़र्ज़दार, अल्लाह के रास्तें में (जिहाद

करने वाले) और यात्रियों के लिये, ये अल्लाह की तरफ़ से तय हुआ काम है और अल्लाह बड़ा ज्ञानी और हिकमत वाला (तत्वदर्शी) है।"

ज़कात को ख़र्च करने के बारे में कुरआन मजीद की ऊपर वर्णित आयत में स्पष्ट रूप से बताया गया है। इसके संबंध में बात यह है कि ज़कात सिर्फ़ उन्हीं लोगों को दी जा सकती है जो फ़क़ीर या ग़रीब हों। यानि जिनके पास या तो माल ही न हो या अगर हो तो निसाब तक न पहुंचता हो। यहां तक कि अगर उनके अधिकार में ज़रूरत से ज़्यादा ऐसा सामान मौजूद है जो साढ़े बावन तोला चांदी की क़ीमत तक पहुंच जाता है तो वो ज़कात के मुस्तहिक़ नहीं है। ज़कात का मुस्तहिक़ वो है जिसके पास साढ़े बावन तोला चांदी की मिल्कियत की रक़म या उतनी मालियत का कोई सामान ज़रूरत से ज़्यादा न हो। इसमें भी शरीअत का हुक्म ये है कि ज़रूरत मन्द को मालिक बना दिया जाये और वो जिस तरह चाहे उसे खर्च करे। इसीलिये बिल्डिंग के निर्माण में ज़कात नहीं लग सकती, न ही किसी संस्था के कर्मचारी की पगार में लग सकती है। इसी तरह कफ़न–दफ़न में ज़कात का पैसा लगाना ठीक नहीं है।

ज़कात अदा करने वाले को चाहिये कि अच्छी तरह पड़ताल करके सही जगह पर लगाने की कोशिश करे। श्रेष्ठ यह है कि सबसे पहले अपने रिश्तेदारों व क़रीबियों में ग़रीब की तलाश करे। रिश्तेदारों में ज़कात अदा करने से डबल सवाब मिलता है। एक ज़कात अदा करने का दूसरे सिलारहमी (रिश्तेदारी निभाना) करने का। यद्यपि दो रिश्ते ऐसे हैं जिनको ज़कात देना ठीक नहीं है। पहला पैदाइशी रिश्ता है जिसके तहत सभी नियम आते हैं। इसीलिए अपने बाप, दादा, नाना, नानी, दादी और उन से ऊपर को ज़कात देना ठीक नहीं है, इसी तरह बेटे, पोते, बेटी, पोती, नवासा, नवासी, और उनसे नीचे वालों पर ज़कात देना ठीक नहीं है। दूसरा निकाह का रिश्ता है इसलिए पति पत्नी को और पत्नी पति को ज़कात नहीं दे सकती है। इन दोनों रिश्तों के अलावा सभी रिश्तेदारों को ज़कात देना जायज़ है। जैसे– भाई, बहन, चचा, फूफी और ख़ाला इत्यादि, लेकिन शर्त यह है कि जिसको ज़कात दी जा रही है वह ज़कात का मुस्तहिक़ हो, यह भी ध्यान रहे कि अपने क़रीबी रिश्तेदारों को यदि यह बताकर ज़कात दी जाए कि यह ज़कात की रक़म है तो हो सकता है कि उन्हें बुरा लगे, इसीलिये शरीअत ने यह सहूलत दी है कि ज़कात देते समय यह बताना आवश्यक नहीं है कि यह ज़कात है।

मुस्तहिक़ होने के साथ साथ एक ज़रूरी शर्त ये है कि मुस्तहिक़ मुसलमान हो। इसीलिये ग़ैर मुस्लिम मुस्तिहिक़ को ज़कात की राशि देना ठीक नहीं है। आप (स0अ0व0) ने फ़रमाया कि ज़कात मुसलमान मालदारों से ली जायेगी और ग़रीब मुसलमानों पर ख़र्च की जायेगी। (बुख़ारी 1496)

मदरसों में ज़कात ख़र्च करने में दोहरा सवाब मिलेगा। एक ज़कात का दूसरे इल्म को फैलाने और दीन की हिफ़ाज़त का।

इसी तरह क़रीबी रिश्तेदारों में ज़कात अदा करने से डबल सवाब मिलता है। एक ज़कात अदा करने का दूसरे सिला रहमी करने का। जैसे भाई, बहन, चचा, फूफी, मामू, भांजे इत्यादि को ज़कात देना शरीअत के अनुसार ठीक ही नहीं बल्कि श्रेष्ठ भी है। रसूलुल्लाह (स0अ0व0) ने फ़रमायाः

"मिस्कीन को देने में एक सदक़े का सवाब है और रिश्तेदारों को देने में दो सदक़े का सवाब है, एक सदके का दूसरा सिलारहमी का।"

रमज़ानुल मुबारक में चूंकि हर फ़र्ज़ इबादत का सवाब सत्तर गुना बढ़ जाता है इसलिये रमज़ान में ज़कात देने में इन्शाअल्लाह सत्तर गुना सवाब की उम्मीद है। लेकिन इसका मतलब ये नहीं कि सारी ज़कात रमज़ान में ही निकाल दी जाये और ग़ैर रमज़ान में फ़क़ीरों की ज़रूरतों का ख़्याल न रखा जाये, बल्कि ज़रूरत व मस्लिहत के एतबार से ख़र्च करने का एहतिमाम करना चाहिये।

(बैहिक़ी फ़िल शोएबुल ईमानः 3/305)

एक फ़क़ीर को एक साथ इतना माल देना कि वो साहबे निसाब हो जाये बेहतर नहीं है, अलबत्ता अगर वो क़र्ज़दार हो और कर्ज़ की अदायगी के लिये बड़ी रक़म दी तो हर्ज नहीं। (हिन्दियाः 1/188)

कर्ज़दार व्यक्ति को कर्ज़ से बरी करने से ज़कात अदा न होगी, अलबत्ता यदि फ़क़ीर मक़रूज़ को ज़कात की रक़म दी, फिर उससे अपना क़र्ज़ वसूल कर लिया तो यह ठीक है। (तहतावीः 390)

एतिकाफ़ के चन्द ज़रूरी मसाएल

एतिकाफ़ के लफ़्ज़ी मानेः लब्स यानी ठहरना और किसी चीज़ को लाज़िम पकड़ने के हैं और चूँकि एतिकाफ़ करने वाला अल्लाह तबारक व तआला की कुर्बत की नीयत से मस्जिद में ठहरता है और मस्जिद को अपने ऊपर लाज़िम कर लेता है, इसलिए इस अमल को एतिकाफ़ कहा जाता है।

एतिकाफ़ की क़िस्मेंः शरीअत में एतिकाफ़ की तीन क़िस्में हैं: एतिकाफ़ वाजिब, एतिकाफ़ सुन्नत–ए–मुअक्कदा, एतिकाफ़ नफ़्ल।

एतिकाफ़ वाजिबः यह एतिकाफ़ नज़्र करने से वाजिब होता है। उदाहरण के तौर पर कोई व्यक्ति कहे कि मुझ पर इतने दिनों का एतिकाफ़ है, तो इतना कह देने से उतने दिनों का एतिकाफ़ वाजिब हो जाएगा। या शर्त के साथ इस तरह कहे कि अगर मैं मुक़दमा जीत गया या बीमारी से शिफ़ा पा गया तो इतने दिनों का एतिकाफ़ करूँगा, तो अल्लाह के फ़ज़्ल से वह काम पूरा हो जाने पर तयशुदा दिनों का एतिकाफ़ वाजिब होगा।(शामीः 2/41)

इस एतिकाफ़ के लिए रोज़ा शर्त है, चाहे मन्नत करते समय रोज़ा रखने की नीयत न की हो। क्योंकि अबू दाऊद में हज़रत आयशा (रज़ि०) से रिवायत हैः "वला एतिकाफ़ इल्ला बिस्सौम" (रोज़े के बिना एतिकाफ़ नहीं होता) इसी वजह से अगर कोई सिर्फ़ रात के एतिकाफ़ की नीयत करे तो वह सही नहीं होगा। (शामीः 2/141) इसके वुजूब की दलील बुख़ारी में मौजूद नबी (स0अ0व0) की हदीस है कि आपने फ़रमायाः "जो अल्लाह तआला की इताअत करने की नज़्र माने, उसे चाहिए कि वह इताअत पूरी करे।" और बुख़ारी ही में दूसरी रिवायत है कि हज़रत उमर (रज़ि०) ने अर्ज़ कियाः "ऐ अल्लाह के रसूल! मैंने नज़्र मानी है कि मस्जिद में एक रात एतिकाफ़ करूँ।" तो आपने फ़रमायाः "अपनी नज़्र पूरी करो।"

नफ़्ली एतिकाफ़ः नफ़्ली एतिकाफ़ के लिए रोज़ा शर्त नहीं है। यह कम समय के लिए भी किया जा सकता है और ज़्यादा समय के लिए भी और इस तरह भी नीयत की जा सकती है कि जब तक मस्जिद में रहूँगा एतिकाफ़ की नीयत है फिर मस्जिद से निकलते ही एतिकाफ़ खत्म हो जाएगा और जब तक मस्जिद में रहेगा, एतिकाफ़ का सवाब मिलता रहेगा। अगर नफ़्ल एतिकाफ़ की नीयत ज़्यादा समय के लिए की हो और पूरा होने से पहले निकलना चाहे तो कोई हरज नहीं।

(शामीः 2/142, हिन्दियाः 1/211)

एतिकाफ़–ए–सुन्नत–ए–मुअक्कदाः यह एतिकाफ़ नबी (स0अ0व0) हर साल रमज़ान के आख़िरी अशरा में पाबंदी से किया करते थे। जिस साल आप (स0अ0व0) का विसाल हुआ, उस साल आपने बीस दिनों का एतिकाफ़ किया। बुख़ारी में हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत हैः

"हर साल नबी (स0अ0व0) दस दिन का एतिकाफ़ किया करते थे, और जिस साल आपका विसाल हुआ उस साल बीस दिन का एतिकाफ़ किया।"(अलहदीस)

रमज़ान के आख़िरी अशरा में मर्दों पर ऐसा एतिकाफ़ ऐसी मस्जिद में करना सुन्नत मुअक्कदा अला–किफ़ाया है जहाँ इमाम और मुअज़्ज़िन हों, चाहे पाँचों वक़्त की नमाज़ न होती हो। (शामीः 2/140)

सुन्नत अलल–किफ़ायाः होने का मतलब यह है कि अगर बस्ती के किसी एक आदमी ने भी एतिकाफ़ कर लिया तो पूरी बस्ती की तरफ़ से काफ़ी समझा जाएगा। और अगर किसी ने भी न किया तो सब सुन्नत छोड़ने वाले होंगे। (शामीः 2/141)

एतिकाफ़ की शर्तेंः वाजिब और मस्नून एतिकाफ़ इन्हीं शर्तों के साथ सही होगा, एतिकाफ़ की नीयत हो; बिना नीयत ठहरना एतिकाफ़ नहीं।

1. एतिकाफ़ की नियत होना बग़ैर नियत के ठहरने को एतिकाफ़ नहीं माना जाएगा।

2. एतिकाफ़ जमाअत वाली मस्जिद में हो; वीरान मस्जिद में एतिकाफ़ सही नहीं। औरत घर में एतिकाफ़ कर सकती है।

3. एतिकाफ़ करने वाला रोज़ेदार हो; बिना रोज़े के वाजिब और मस्नून एतिकाफ़ सही नहीं।

4. जनाबत, हैज़ और निफ़ास से पाक हो।

5. अक़्लमंद हो; पागल का एतिकाफ़ सही नहीं। बालिग़ होना शर्त नहीं, समझदार बच्चा एतिकाफ़ करे तो सही है। (हिंदियाः 1/211)

मस्जिद से बाहर निकलना कब जायज़ है?

नबी (स0अ0व0) हालत–ए–एतिकाफ़ में सिर्फ़ बहुत ज़रूरी कामों के लिए मस्जिद से बाहर निकलते थे। बुख़ारी व मुस्लिम की रिवायत में हज़रत आयशा (रज़ि०) फ़रमाती हैंः "नबी (स0अ0व0) सिर्फ़ इंसानी ज़रूरतों (पेशाब–पाख़ाना) के लिए घर में दाख़लि होते थे।"

अबू दाऊद की रिवायत में हज़रत आयशा रज़ि0 फ़रमाती हैः "मुअतकिफ़ न किसी बीमार की इयादत करे, न जनाज़े में जाए, न बीवी को शहवत से छुए, न उससे हमबिस्तरी करे, और सिर्फ़ उन्हीं ज़रूरतों के लिए निकले जिनके बिना कोई चारा न हो।"

फ़ुक़हा ने इन अहादीस की रोशनी में नीचे दी गई ज़रूरतों और ऐज़ार की बुनियाद पर मस्जिद से बाहर निकलने को जायज़ क़रार दिया है, अगर इस तरह की ज़रूरत के बग़ैर मस्जिद से बाहर निकलेगा तो एतिकाफ़ फ़ासिद हो जाएगाः

इस्तिंजा के लिए निकलनाः छोटे–बड़े इस्तिंजा के लिए मस्दिज से बाहर निकलना जायज़ है। इस ज़रूरत को घर जाकर भी पूरा कर सकता है, आते–जाते सलाम भी कर सकता है, लेकिन अगर ठहरकर बात की तो एतिकाफ़ फ़ासिद हो जाएगा। (हिंदियाः 1/212, शामीः 2/143)

खाना के लिए निकलनाः अगर खाना लाने वाला कोई न हो तो खुद जा सकता है। इसलिए कि लाने वाला मौजूद न हो तो यह भी हवाएज–ए–ज़रूरिया में दाख़िल है। (तहतावी अला अल–मराक़ीः 384)

ग़ुस्ल–ए–वाजिब के लिए निकलनाः अगर एहतलाम हो जाए तो ग़ुस्ल के लिए बाहर निकलना जाएज़ है लेकिन जुमे के दिन ग़ुस्ल करने के लिए इसी तरह गर्मी के मौसम में ठंडक हासिल करने के लिए ग़ुस्ल करने के लिए निकलने को आम तौर से फ़ुक़हा ने मना किया है। लिहाज़ा अगर इन कामों के लिए ग़ुस्ल करना हो तो मस्जिद के किसी किनारे में ग़ुस्ल कर ले जहां पानी की निकासी हो जाती हो और ग़ुस्ल के बाद उस पर पानी बहा दे या किसी टब वग़ैरह में ग़ुस्ल कर ले। (शामीः 2/143)

इज़्तिरारी हालत में निकलनाः अगर मस्जिद गिरने लगे या वहां जान का ख़तरा हो तो उस मस्जिद से निकल कर दूसरी मस्जिद जा सकता है, इससे एतिकाफ़ फ़ासिद नहीं होगा। (फ़तावा हिंदियाः 1/212)

जुमे की नमाज़ पढ़ने के लिए निकलनाः अगर ऐसी मस्जिद में एतिकाफ़ किया जहां जुमे की नमाज़ नहीं होती है तो जुमे की नमाज़ पढ़ने के लिए जुमा मस्जिद जा सकता है, लेकिन ऐसे वक़्त में निकलना चाहिए जुमा मस्जिद में पहुंचने के बाद पहले की सुन्नतें पढ़ सके और बाद में सुन्नतें पढ़कर वापस आ जाए। वहां देर तक बैठना ख़िलाफ़–ए–ऊला है, लेकिन इससे एतिकाफ़ फ़ासिद नहीं होगा। (शामीः 2/144)

अगर बीमार की इयादत, जनाज़े में शरीक होने या इलाज की ज़रूरत के लिए निकले तो एतिकाफ़ फ़ासिद हो जाएगा। अलबत्ता अगर इस्तिन्जा के लिए निकलते वक़्त या घर से खाना लाते वक़्त मरीज़ की इयादत कर ली या जनाज़े की नमाज़ हो रही थी इसमें शिरकत कर ली और देर तक नहीं ठहरा बल्कि चलते–चलते उसको अंजाम दे लिया तो एतिकाफ़ फ़ासिद नहीं होगा।(अल–बहरुर–राइक़ः 2/302, हिंदियाः 1/212)

इलाज वग़ैरह की ज़रूरत हो तो मोतकिफ़ को लेकर बाहर निकलना जाएज़ है गुनाह नहीं होगा लेकिन एतिकाफ़ फ़ासिद हो जाएगा। (हिन्दियाः 1/121)

बीड़ी वग़ैरह का आदी शख़्स इस्तिंजा वग़ैरह के लिए बाहर निकलते वक़्त ज़रूरत पूरी कर सकता है, ख़ास उसी के लिए बाहर नहीं निकलना चाहिए लेकिन अगर ऐसा आदी है कि बेचैनी हो जाती है तो उसके लिए निकलना इन्सानी हाजत में हो जाएगा, और उसके लिए निकलने से एतिकाफ़ फ़ासिद नहीं होगा। (रहीमियाः 5/202)

जिस तरह मर्द का एतिकाफ़ मस्जिद से निकलने से फ़ासिद हो जाता है, उसी तरह औरत अगर एतिकाफ़ की मख़्सूस जगह आंगन में तबई ज़रूरत के बग़ैर निकल आए तो उसका एतिकाफ़ भी फ़ासिद हो जाएगा। (हिन्दियाः 1/212)

एतिकाफ़ में अल्लाह जितनी तौफ़ीक़ दे इबादत में मशग़ूल रहे, जिसमें तिलावत, ज़िक्र–ओ–अज़कार, नफ़्ल वग़ैरह का पढ़ना सब शामिल है। लोगों से बात–चीत कर सकता है, बल्कि इबादत समझकर चुप रहना मकरूह है। फ़िज़ूल बातों से बचना चाहिए। ज़रूरी बातें मोबाइल पर करना भी जायज़ है। (शामीः 2/147, हिंदियाः 1/213)

इन्सानियत व शराफ़त और इज़हार–ए–बन्दगी का महीना

"रोज़ा इस्लाम के पाँच बुनियादी अरकान में से एक बुनियादी रुक्न है, यह बुनियादी अरकान–ए–इस्लाम के वे स्तंभ हैं जिन पर दीन–ए–इस्लाम की इमारत क़ायम है। इनमें से हर स्तंभ की हिफ़ाज़त ज़रूरी है ताकि दीन–ए–इस्लाम की इमारत क़ायम रहे। इस्लाम के एक बुनियादी रुक्न होने के साथ रोज़ा की जो ख़ुसूसियात और फ़वाइद हैं, उन पर इंसान अपनी फ़ितरत–ए–सलीमा के लिहाज़ से ग़ौर करे तो उसको इसमें अपनी ज़िंदगी के लिए कई रौशन पहलू नज़र आएँगे। आला इंसानी क़दरों पर अमल के लिए अपनी नफ़्सानी ख़्वाहिशात को दबाने और अपनी ग़रज़ और ख़्वाहिश को नज़रअंदाज़ करके अपने परवरदिगार के अहकाम की बजा–आवरी इसके अहम पहलू हैं। रोज़ा के ज़रिये इंसान एक तरफ़ बातिनी ख़ूबियों से आरास्ता होने की कोशिश करता है और दूसरी तरफ़ दूसरों के दुख व परेशानी को अपने तजुर्बे में लाकर अपने अंदर हमदर्दी और रहमदिली के एहसास को जगह देता है। रोज़ा में मामला सिर्फ़ खाने–पीने ही में परहेज़ व पाबंदी का नहीं है बल्कि ख़्वाहिश और पसंद की दीगर मुतअद्दिद बातों से भी उसको गुरेज़ करना होता है, मसलन: जिन्सी तक़ाज़े की तलब और गुफ़्तगू में, दूसरों की ऐबजोई और इसी तरह की दूसरी बेएहतियातियाँ जिनमें इंसानी नफ़्स आज़ादी इख़्तियार करता रहता है। रोज़ा में इनसे गुरेज़ की पूरी फ़िक्र करना पड़ती है। ग़िज़ा में वक़्त की एक ख़ास पाबंदी के अलावा दूसरों की तंगहाली का एहसास करने और अपनी राहत व तकमील–ए–ज़रूरत में हिस्सा लेने की ज़िम्मेदारी भी उसको निभानी पड़ती है।

यह सिलसिला एक माह चलता है। इस तरह रमज़ान का महीना इंसानियत व शराफ़त और ख़ुदा–ए–वाहिद के सामने इज़्हार–ए–ताबेदारी व बंदगी की तरबियत का महीना बन जाता है, जिसको गुज़ारकर इंसान बातिनी हालात के लिहाज़ से पाक व साफ़ तबीयत लेकर निकलता है।

रमज़ान के उन्तीस या तीस दिन ऐसी नूरानी कैफ़ियात व हालात में गुज़रकर ईदुल–फ़ित्र का दिन आता है, जो लुत्फ़ व इबादत और राहत व कुबूलियत दोनों को समेटे हुए आता है। इसमें दुनियावी और दीनी दोनों लिहाज़ से मसर्रत का सामान होता है। एक तरफ़ तो उसको अपनी जायज़ पसंद व ख़्वाहिशात के मुताबिक़ ज़िंदगी गुज़ारने की आज़ादी मिलती है और दूसरी तरफ़ पूरे एक माह इताअत व फ़रमाँबरदारी और इबादत के अज्र का फ़ैसला होता है और उसको उसके इनाम से नवाज़ा जाता है। इस बुनियाद पर ईद की रात को लैलतुल–जाइज़ा यानी इनाम की रात कहा गया है।

रमज़ान अपने हक़ अदा करने वाले को ऐसी पाकीज़गी अता कर देता है जो उसके लिए साल भर के लिए तोशा–ए–बरकत व रहमत बनती है और साल गुज़रने पर फिर इस मुबारक अमल का मौक़ा आ जाता है और ख़ैर व बरकत का यह प्रोग्राम दोहराने का मौक़ा मयस्सर आ जाता है।

रमज़ान का महीना एक मुसलमान को इस बात के एहसास से वाक़िफ़ करा देता है कि इस ज़मीन पर कितने ऐसे आदमी हैं जो इंसानी रिश्ते से उसी की तरह हैं लेकिन उनको भूख बर्दाश्त करनी पड़ती है, और कितने ऐसे हैं जिनको उनके इंसानी तक़ाज़ों को पूरा करने का पूरा सामान हासिल नहीं। रमज़ान यह भी बताता है कि आदमी को अपने इर्द–गिर्द रहने वाले अपने हमजिन्सों की तकलीफ़ और दुख को जानना चाहिए।" (तोहफ़ा–ए–रमज़ान: ४३–४६)

मुर्शिदुल उम्मत हज़रत मौलाना सैय्यद मुहम्मद राबे हसनी नदवी (रह०)

R.N.I. No.
UPHIN/2009/30527

Monthly
ARAFAT KIRAN
Raebareli

Issue: 03-04 ❁ Mar-Apr 2026 ❁ Volume: 18

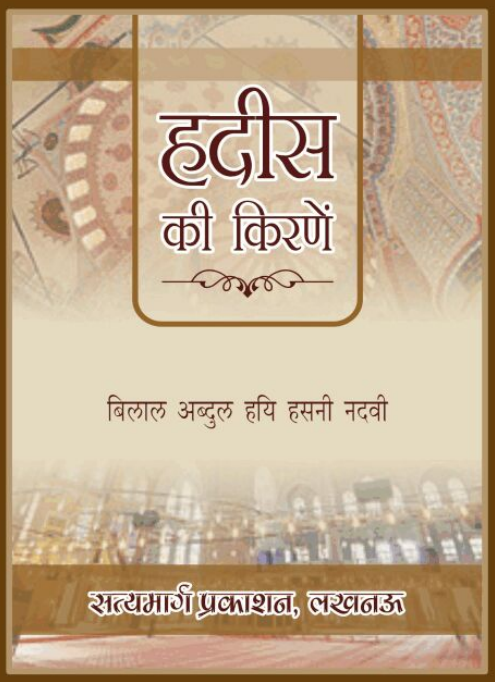

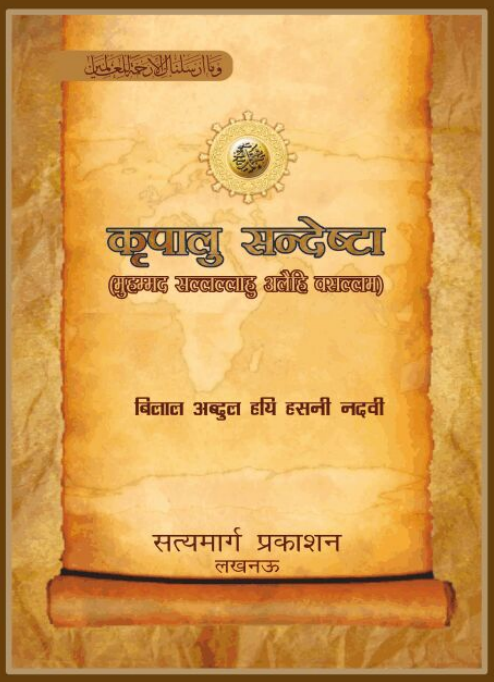

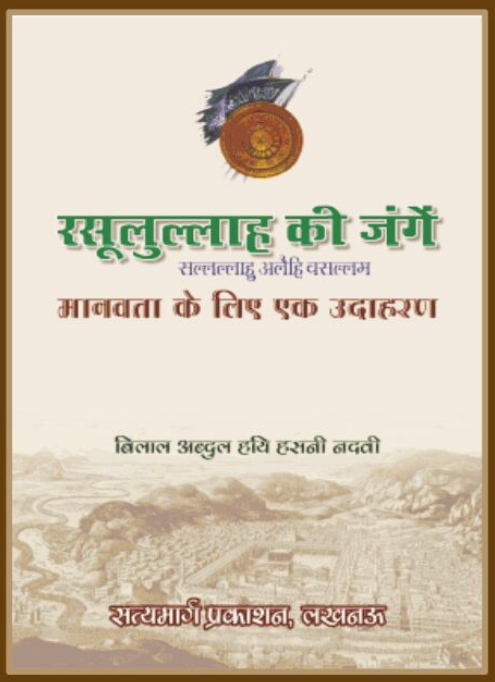

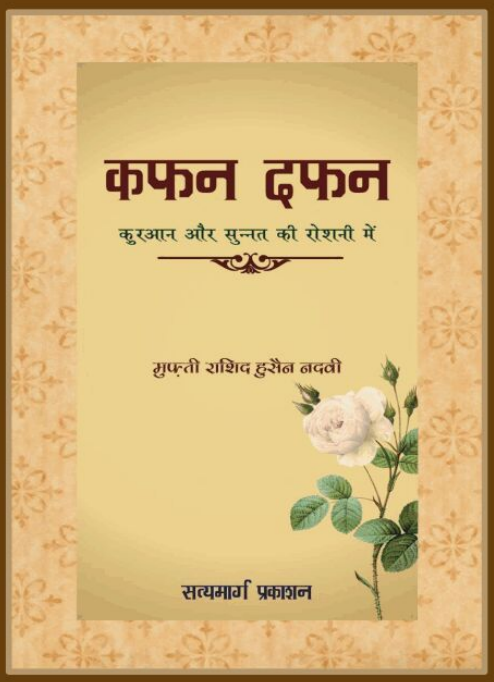

Editor: Bilal Abdul Hai Hasani Nadwi
MARKAZUL IMAM ABIL HASAN AL-NADWI
Dare Arafat, Takiya Kalan, Raebareli, U.P.
Mobile:9565271812
E-Mail: markazulimam@gmail.com
www.abulhasanalinadwi.org

Printed & Published by: Mohammad Hasan Nadwi
On Behalf of: Markazul Imam Abil Hasan Al-Nadwi
Printed at S.A. Offset Printers, Masjid ke peeche,Phatak
Abdullah Khan, Sabzi Mandi, Station Road, Raebareli, U.P.